हम सबला

जागोरी की पत्रिका
जनवरी–अप्रैल 2011

यौनिकता विशेषांक

हम सबला

जनवरी-अप्रैल 2011

अतिथि संपादक
प्रमदा मेनन

संपादन एवं अनुवाद
जुही जैन

संपादन सहयोग
जया श्रीवास्तव
कल्याणी मेनन-सेन
खुर्शीद अनवर
सीमा श्रीवास्तव
रत्नमंजरी

कवर्स
गीति थडानी

मुखपृष्ठः जगह-पाटन, नेपाल
शीर्षकः जमी संभोग-कमल की प्रवीणता हासिल करना।

पिछला कवरः जगह-देविकापुरम, तमिलनाडू (लगभग 1000 वर्ष पुरानी)
शीर्षकः कुंडलिनी योग-कुंडलिनी संतुलन

ये तस्वीरें जागोरी कैलेण्डर 'आदि-अनादि' (2004) में पूर्व प्रकाशित की गई हैं।

रेखाचित्रः जागोरी नोटबुक 2006 से

सज्जा व मुद्रणः सिस्टम्स विज़न
systemsvision@gmail.com

जागोरी JAGORI

बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर
नई दिल्ली 110 017

ई-मेल humsabla.patrika@jagori.org
वेबसाइट www.jagori.org
दूरभाष 26691219, 26691220
हेल्पलाइन 26692700

इस अंक में

हमारी बात	प्रमदा मेनन	1
लेख		
प्राकृतिक कितना स्वाभाविक है?	निवेदिता मेनन	4
नियामक मानदंडों और शारीरिक परिभाषाओं पर कुछ सवाल	शालिनी महाजन	11
युग दर युग नैतिकता	मंजिमा भट्टाचार्य	19
देवी-स्त्री यौनिकता	अनामिका	41
आमने-सामने		
क्या खूबसूरती यौनिकता का प्रतिबिम्ब है?	नंदनी राव	8
चयन बनाम नैतिकता	मीनू पांडे	22
युवा यौनिकता-कुछ सवाल	रीना ओ-लियरी	23
जुग-जुग जियेसु ललनवा	शशिकला राय	36
संवाद		
आज़ादी की राह पर	गौतम भान	31
एक ऐतिहासिक जीत	पिटारा	33
सही या गलत के घेरे में 'पोर्नोग्राफ़ी'	जुही	35
अभियान		
यौनिक स्वास्थ्य व अधिकार - कुछ आधार	तारशी	17
यौनिकता और हम	जया शर्मा	28
कहानी		
बू	सआदत हसन मंटो	24
कविता		
मैं अदना औरत	सुमन केशरी	10
सम्भोग	मनीषा कुलश्रेष्ठ	10
साथिन ठंडी-ठंडी	शान्ति	30
दरअसल उसे समझना खुद को समझना है	पवन करण	42
अशीर्षक	सीमा श्रीवास्तव	
पुस्तक परिचय		
पहली बूंदों का बरसना-कच्ची मिट्टी का महकना		43
फ़िल्म		46
अन्त में	जुही	47
नया प्रकाशन		34

हमारी बात

चलो सेक्स की बात करें

मैं लोगों को उकसाने का काम हमेशा करती रही हूं। नब्बे के दशक के दौरान विकास के क्षेत्र में अधिकारों पर होने वाली मीटिंगों के दौरान मैं हमेशा पूछती, 'आप जेंडर के बारे में क्या सोचते हैं?' यह सवाल सुनकर चेहरों पर उभरने वाले भाव मुझे आज भी याद हैं। उनके भावों में एक तड़प थी 'हे भगवान! ये नारीवादी है!' एक दशक गुज़रने के बाद मैं अभी भी महिला अधिकारों की मीटिंगों में अपने आपको सवाल पूछते हुए पाती हूं। अब सवाल होता है 'यौनिकता के बारे में आपके क्या विचार हैं?' यह सवाल सुनकर भी चेहरों पर अलग-अलग तरीके के भाव दिखाई देते हैं। ये भाव 'गुमराह/गंदी' से लेकर 'हे भगवान! यह लेस्बियन है' तक होते हैं। सूरतेहाल अजीब स्थिति रही है।

मगर क्या ये सवाल ऐसे हैं जो पूछने ही नहीं चाहिए? क्या जेंडर और यौनिकता हमारी ज़िन्दगियों के स्वाभाविक अंग नहीं हैं? क्या हमें ये सवाल इसलिए नहीं पूछने चाहिए, ताकि इनसे उपजी चर्चाओं से कुछ हद तक हमारे आसपास की दुनिया में बदलाव आ सकता है? इन शब्दों में ऐसा क्या है जिससे लगता है कि कुछ अप्रिय सामने आ जाएगा जिसको संभालना असंभव व मुश्किल होगा?

शायद लोग मुझसे इसलिए डरते रहे हैं क्योंकि मैं यौनिकता के बारे में बात करती हूं और इन मुद्दों पर प्रशिक्षण भी देती हूं। इसकी तुलना में जेंडर बहुत आसान शब्द लगता है। मैंने जानने का प्रयास किया कि ऐसा क्या है जिससे लोग इतना घबरा रहे हैं? इन दोनों शब्दों में ऐसा क्या है कि लोग इन्हें अपने काम में शामिल नहीं कर पाते हैं?

जब मैंने विकास के क्षेत्र में काम करना शुरू किया— या आजकल की राजनैतिक रूप से सही भाषा में मुझे कहना चाहिए कि जब मैंने मानव अधिकार के मुद्दों पर काम करना शुरू किया— तब जेंडर को एक राजनैतिक शब्द माना जाता था। कितने बरसों तक हमारे पास ऐसा कोई उपयुक्त तरीका नहीं था जिससे समाज में औरतों की अहमियत का अंदाज़ा हो सके। यहां तक कि हमें यह भी पता नहीं था कि हमारा गांव में जाकर एक बूढ़े पुरुष से गांव की औरतों की समस्याओं के बारे में पूछना ठीक है भी कि नहीं। सालों तक इस तरह की स्थिति के बाद जेंडर शब्द हमें मिला था। जेंडर एक ऐसा शब्द था जिसकी मदद से मर्दों को अपनी पत्नी के बारे में यह कहने से रोका जा सकता था कि 'वो काम नहीं करती'। जेंडर शब्द की वजह से मर्दों को यह कहने से भी रोका जा सकता था कि अगर औरतें पैसे नहीं कमातीं, तो उनकी कोई अहमियत नहीं है। जेंडर से ऐसी क्रांति आई जिसकी वजह से कई खोजें हुईं। इससे जेंडर समता और जेंडर समानता में बेहतर क्या है, इसके बारे में चर्चाएं हुईं। जेंडर मुख्यधारा की निराली दुनिया भी जेंडर से ही मिली।

फिर जेंडर का इस्तेमाल एक राजनैतिक साधन के रूप में होना बंद हो गया। सभी स्वयंसेवी, गैर सरकारी संस्थाएं इस पर काम करने लगीं। डोनर और महिला संगठन इसकी मांग करने लगे। हर प्रशिक्षण कार्यशाला की शुरूआत सेक्स (लिंग) और जेंडर के फ़र्क़ से होने लगी जिसमें सेक्स को जैविक ठहराया जाता और जेंडर को सामाजिक। इसके साथ होने लगे औरतों के लंबे कमरतोड़ काम के और मर्दों के कम काम के वर्णन। इन सर्वव्यापक जेंडर प्रशिक्षण के लिए बहुत सी औरतों को नियुक्त किया जा रहा था और संस्थाएं दावा करने लगीं कि चूंकि उनके कर्मचारियों ने जेंडर के एक प्रशिक्षण में भाग ले लिया है, उनकी जेंडर मुख्यधारा पर काम की भागीदारी पूरी हो गई है।

यह सब देखकर मैं हताश होने ही लगी थी कि मुझे महसूस हुआ कि यौनिकता शब्द महिला आंदोलन के शब्दकोष में फैल चुका है और एक ठोस राजनैतिक साधन भी माना जाने लगा है। उसी समय मुझे समझ आया कि सिर्फ़ जेंडर भूमिका के बारे में बात करना फिजूल होगा। मुझे एक बड़ा और पेचिदा संसार सामने दिखने लगा जिसमें दमनकारी विषमलैंगिक विचारधारा का स्पष्ट अभाव था। मुझे नज़र आया कि जेंडर के अनुरूप न चलने से लोगों को बहुत समस्याएं हो रही थीं– शादी के बिना साथ रह रहे लोगों को अपमान का सामना करना पड़ रहा था, उन पर ज़बरदस्ती शादी थोपी जा रही थी। स्कूल दूर होने की वजह से लड़कियों का स्कूल छुड़वाया जा रहा था। अभिभावकों को लड़कियों की सुरक्षा की चिंता थी और लड़की की इच्छा की अभिव्यक्ति से डर लगता था। वहीं भारत के नारी आंदोलन को लेस्बियन शब्द कहने में हिचकिचाहट थी और यौनिकता को हर बार हिंसा से जोड़ दिया जाता था।

तब मैंने जेंडर और यौनिकता को संयुक्त रूप से देखा और वही पुराने सेक्स विपरीत जेंडर के विवाद पर पुनः विचार किया। हम समझते हैं कि सेक्स (लिंग) जैविक/नैसर्गिक है और मर्द और औरत के अंगों को दर्शाता है, जबकि जेंडर समाज ने बनाया है और औरत और मर्द की भूमिकाओं को दर्शाता है। इसके बावजूद मेरी सोच और सीख ने यह स्पष्ट किया कि सेक्स का निर्माण भी किया जा सकता है और यदि कोई अपना सेक्स बदलना चाहता है, तो उसे रोका नहीं जा सकता।

इस वजह से मैंने सेक्स की अपनी परिभाषा को बदला। सेक्स का मतलब है वे जैविक लक्षण जो व्यक्ति को औरत या मर्द निर्धारित करते हैं। यह जैविक लक्षण परस्पर भिन्न नहीं हैं, क्योंकि ऐसे व्यक्ति भी हैं जिनमें दोनों जैविक लक्षण मौजूद हैं। यह लक्षण व्यक्तियों में औरत या मर्द का फ़र्क़ निर्धारित करते हैं। इस परिभाषा में मैंने जोड़ा कि अगर कोई चाहे तो सेक्स को बदला या बनाया भी जा सकता है।

इसके बाद आया यौनिकता का संसार जिसमें जेंडर, सेक्स और बहुत कुछ एक साथ में शामिल था। अब हमको संवेदना, व्यवहार, जेंडर पहचान और भूमिका, यौनिक रूझान, कामुकता, आनंद, घनिष्ठता और प्रजनन– को ध्यान में रखना था। हमें चर्चा करनी थी कि यौनिकता को किस तरह सोच, सपनों, इच्छाओं, धारणा, रवैयों, परंपराओं, बर्ताव, दस्तूर, भूमिकाओं और रिश्तों में अनुभव और अभिव्यक्त किया जा रहा है। हमें यह भी मंजूर करना था कि जबकि यौनिकता के यह सब आयाम हो सकते हैं, सभी आयाम हमेशा

अनुभव या व्यक्त नहीं किए जाते हैं। हमें यह बात भी ध्यान में रखनी थी कि यौनिकता पर जैविक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, नैतिक, कानूनी, ऐतिहासिक, धार्मिक और आत्मिक— कारणों का प्रभाव पड़ता है।

तो भारत में हमारा सेक्स और यौनिकता की नई दुनिया से परिचय हो गया। हम कोशिश कर रहे हैं ऐसे तरीके खोजने की जिससे यह सब एक ऐसी भाषा में तब्दील हो सके जिसको सभी समझ सकें और अपनी समझ को चुनौती देने के लिए इस्तेमाल भी कर सकें। ऐसा करने में चुनौतियां बहुत हैं।

हम किस तरह अस्थिरता के मुद्दों का सामना कर सकते हैं? हम एक ऐसी दुनिया से परिचित हैं जिसमें सिर्फ़ औरत और मर्द ही शामिल किए जाते हैं। अब हमें इस पूरी व्यवस्था को नए नज़रिए से देखने का मौका मिला है। हमारे आसपास मर्द जैसी दिखने वाली औरतें हैं और औरतों जैसा महसूस करने वाले आदमी। अदल-बदल, उलट-फेर, हर तरफ, हर समय संभव है। अगर हम अपनी दुनिया को दोयम न बनाएं, तो 2हमारे सामने अनन्त सम्भावनाएं होंगी और हमें अपने आपको किसी भी तरह से सीमित करने के लिए बाध्य नहीं होना पड़ेगा।

हम सहमति/स्वीकृति के बारे में क्या सोचते हैं? हमने देश में कानूनी सुधारों मे बहुत समय लगा दिया है। इस काम में हमारा तर्क रहा है कि स्वीकृति यह पता लगाने का आधार है कि कोई यौनिक क्रिया बलात्कार है या नहीं। हम औरत के हां या ना कहने की क्षमता में तो यकीन करते हैं, लेकिन जब बात यौन कर्मियों की हो, लेस्बियन या औरतों को चाहने वाली औरतों की, तो हम उन पहचानों को पुष्टि और उनकी यौनिक पहचान के साथ उनको मान्यता देने को तैयार नहीं होते। हम उनकी यौनिकता को असामान्य रूप से देखते हैं और उन्हें उनके वर्तमान से बाहर निकालने की बात करते हैं।

युवतियों की यौनिकता के बारे में हमारी सोच क्या होती है? हम युवतियों की यौनिकता को स्वीकारने में हिचकिचाते हैं और सोचते हैं कि वे तभी यौनिक रिश्ते रखेंगी जब वे 'कानूनी' तौर पर सही उम्र की हो जाएंगी। हम विषमलैंगिकता और समलैंगिकता की दमनकारी विचारधारा को किस प्रकार देखते हैं? हम एक ऐसी दुनिया में रहते हैं, जहां औरत और मर्द ही शादी करते हैं और परिवार बनाते हैं। इस व्यवस्था में किसी और तरीके की भागीदारी स्वीकृत नहीं है। वहीं समलैंगिक समाजों में, हम एक ही तरह की चाहत देखना चाहते हैं और इसलिए उन औरतों को शामिल नहीं कर पाते जो मर्दों और औरतों दोनों को चाहती हों या वे औरतें जो अपने आपको कुछ समय के लिए ही लेस्बियन कहना पसंद करती हों।

हिंसा का असर सब पर होता है, इस पर हमारे क्या विचार हैं? जब हम लैंगिक उत्पीड़न या हिंसा की बात करते हैं, हम सिर्फ़ औरतों के बारे में सोचते हैं। हम इसमें उन मर्दों को शामिल नहीं करते जो 'मर्दानगी' के ढांचे में न आने के कारण यौनिक व लैंगिक उत्पीड़न का सामना करते हैं। न ही हम उन औरतों की बात करते हैं जो औरतों जैसी नहीं दिखतीं। उसी तरह, यौनिकता और विकलांगता के बारे में सोचते समय हम जिस विचारधारा को मानते हैं, उसमें सिर्फ़ 'योग्य' शरीर के लोग ही शामिल होते हैं।

यौनिकता हमारे सामने एक ऐसी दुनिया प्रस्तुत कर रही है जिसमें हम फिर से प्रश्न उठा सकते हैं और आज की व्यवस्था बदल सकते हैं। इसके बावजूद हम उसी सोच के साथ बंधना चाहते हैं जिससे हम पिछले कई सौ सालों से बंधे हैं। यह दुनिया बदल रही है और हमें इस बदलाव का सामना करना चाहिए ताकि इस दुनिया की औरतों के सामने पहले से ज़्यादा विकल्प हों, वे बिना बंधनों के अपना जीवन जी सकें और एक ऐसे भविष्य की तरफ जा सकें जो उनकी चाहतों और सपनों के अनुरूप हो।

—प्रमदा मेनन

लेख

प्राकृतिक कितना स्वाभाविक है?

नारीवाद एवं अनिवार्य विषमलैंगिकता

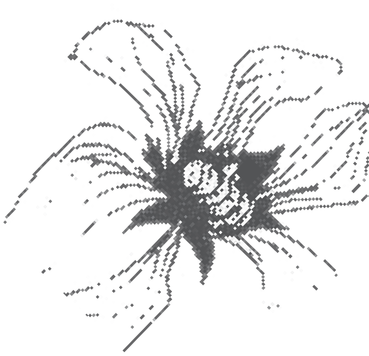

निवेदिता मेनन

भारत में यौन इच्छाओं के विषय को उठाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को हमेशा ही इस चेतावनी का सामना करना पड़ा है कि हमारे समक्ष निर्धनता, जाति और सांप्रदायिकता जैसे अन्य गंभीर विषय हैं जिन्हें पहले हल किया जाना आवश्यक है। यह एक ऐसा तर्क है जिसके सामने प्रचलित सामान्य व्यवहारों को चुनौती देने वाला प्रत्येक विषय बेमानी हो जाता है। उदाहरण के लिए आरक्षण के मामले में यह सुनने को मिलता है कि नौकरियों में आरक्षण देने मात्र से दलितों का भला नहीं होने वाला और भूमि सुधार जैसे आधारभूत परिवर्तनों के आ जाने के पश्चात ही उनकी स्थिति में वास्तविक सुधार होगा। जब तक पूरी तरह से स्पष्ट बदलाव नहीं हो जाते तब तक हमें स्थिति को यथावत रखना चाहिए। यदि आपके विचार इन प्रचलित विचारों से मेल न खाते हों और आप बार-बार कहें कि उपेक्षित समूह के उत्पीड़न का विषय भी महत्वपूर्ण और शीघ्र हल किये जाने वाला है तो आप पर 'अलग पहचान बनाने की राजनीति करने' और आम राय कायम करने के प्रयासों को धक्का पहुंचाने का आरोप लग जाता है।

यह आरोप उन लोगों द्वारा लगाया जाता है जो महिला, मुस्लिम, दलित या समलैंगिक जैसी किसी पहचान की अपेक्षा 'भारतीय नागरिक' जैसी काल्पनिक पहचान को ओढ़े होते हैं। आप वास्तव में अत्यंत सौभाग्यशाली होंगे यदि आप 'नागरिक' होने के इस काल्पनिक लेबल को ओढ़ने का साहस कर सकें। यदि आप किसी विशेष वर्ग से संबंध रखने के कारण अच्छी स्थिति में हों तो ही आप यह भूल सकते हैं कि आप उपरोक्त किसी एक पहचान का भी भाग हैं। इस सबके बावजूद अधिकांश महिलाओं, गैर-विषमलैंगिकों, दलितों और मुसलमानों को अपने अनुभवों के आधार पर यह पता है कि वे चाहे यह कहते रहें कि वे भी केवल 'नागरिक' ही हैं परन्तु वास्तविकता यह है कि उन्हें उनकी पहचान के आधार पर चिन्हित कर दिया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि पहचान बनाने की राजनीति को लोकतांत्रिक कहकर परिभाषित किया जा सकता है क्योंकि पहचान का दावा करने के बहुत से अलोकतांत्रिक परिणाम भी हो सकते हैं। इसी तरह पहचान बनाने की राजनीति की प्रत्येक घटना को उनके द्वारा स्वयं को समाज के संदर्भ में परिभाषित किए जाने पर ध्यान दिये बिना ही उन्हें बुरा भी नहीं कहा जा सकता।

अब जहां तक पितृसत्ता का प्रश्न है तो नारीवादियों के उदगम के समय से ही उन्हें 'उत्पीड़न की व्यवस्था' का सामना करना पड़ा है। आमतौर पर जेंडर को किसी भी 'व्यापक पहचान या समूह' के साथ जोड़कर देखा जाता है और वर्ग, जाति, साम्प्रदायिकता, विकास के साथ जेंडर को जोड़ दिया जाता है। फिर पूछा जाता है कि साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाओं, जातीय उत्पीड़न और शक्तिविहीनों को हाशिये पर लाने वाली विकास की कार्ययोजनाओं से महिलायें और बच्चे किस प्रकार प्रभावित होते हैं। कभी भी यह नहीं कहा जाता कि पुरुष और बच्चे इनसे कैसे प्रभावित होते हैं। इस तरह जितने अधिक प्रश्न पूछे जायेंगे उतना ही इस मुख्य विषय को पहचान पाना कठिन हो जायेगा। यदि आप गंभीरता से जेंडर को उत्पीड़न की धुरी समझते हैं तो वर्ग, जाति और राष्ट्र स्वयं ही बहुत अलग नज़र आयेंगे। आप केवल इनमें जेंडर को जोड़कर हिला नहीं सकते।

जहां तक यौनिकता का प्रश्न है, नारीवादियों ने पितृसत्ता के अपने अनुभवों से बहुत कुछ सीखा है। यद्यपि सक्रिय रूप से इसमें स्वयं से डरने की भावना प्रकट नहीं होती फिर भी, आमतौर पर हमारे आंदोलन में यही कहा जाता है कि 'अभी नहीं, अभी सही समय नहीं है'। परन्तु क्या

'यौन व्यवहार और इच्छायें' केवल नारीवादिता के साथ जोड़ दिये गये विशेषण मात्र ही हैं। या फिर इस प्रश्न को इस तरह से अनुवाद कर प्रस्तुत किया जाये ताकि कोई भी नारीवादी इसे समझ सके — क्या जेंडर केवल राष्ट्रवाद या विकास के साथ जोड़ कर देखा जाने वाला विषय मात्र है? क्या हम नारीवादियों ने 50 वर्षों तक 'जेंडर को जोड़ो और हिलाओ' की प्रवृत्ति को केवल इसलिए चुनौती दी कि हम यौनिकता के विषय पर स्वयं ही इसे लागू कर देंगे?

हमें विशेष रूप से यह जानने की आवश्यकता है कि विषमलैंगिकता को सामान्य व्यवहार मानने में ही पितृसत्ता का मूल है। पितृसत्ता को जारी रखने के लिए आवश्यक है कि विषमलैंगिकता को अनिवार्य रखा जाये। अनिवार्य विषमलैंगिकता व्यक्ति की पहचान के अन्य स्वरूपों को भी घोषित करती है। जाति, वर्ण और सामुदायिक आधार पर व्यक्ति की पहचान जन्म से निर्धारित होती है। इन सभी पहचानों और सामाजिक संरचनाओं की शुद्धता तथा संपत्ति आधारित संबंधों को सुरक्षित रखने के लिए महिलाओं की यौनिकता पर कड़ा नियंत्रण रखा जाता है। केवल परिवार के पितृसत्तात्मक वर्तमान स्वरूप को ही सामाजिक अनुमति दी जाती है ताकि देश और समुदाय बने रह सकें।

पितृसत्तात्मक परिवारों को प्राकृतिक मान लिये जाने का एक उदाहरण देखें — मृत्युदंड शीर्षक से बनी फ़िल्म में स्पष्ट रूप से गर्भवती दिख रही शबाना, जिसका पति नपुंसक है, से पूछा जाता है कि "यह किसका बच्चा है"? इस प्रश्न के उत्तर में वह सामान्य रूप से उत्तर देती है "मेरा"। यह तो स्पष्ट है कि उसके पेट में पल रहा शिशु उसी का है परन्तु पितृसत्तात्मक समाज में यह प्रश्न अधिक महत्व रखता है कि इस बच्चे का बाप कौन है, वह किसकी जाति का होगा और किसकी संपत्ति पर अधिकार करेगा? यह तो स्पष्ट है कि यदि परिवार का यह स्वरूप भंग हो जाये तो राष्ट्र, जाति, वर्ण या समुदाय की पहचान को बनाये नहीं रखा जा सकता। इसके अतिरिक्त संपत्ति के बंटवारे की कोई प्रणाली भी स्थापित नहीं रह सकती। इसका अर्थ यह होगा कि पितृसत्ता, पूंजीवाद और पहचान बनाने की अलोकतांत्रिक राजनैतिक प्रक्रिया को चुनौती देना विषमलैंगिक परिवार की प्राकृतिक स्थिति को चुनौती देने के समान ही होगा।

सामाजिक दायरों की निगरानी मात्र करना ही वैवाहिक संस्था का एकमात्र कार्य नहीं है। 1984 में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि पारिवारिक परिभाषा के अंतर्गत समानता और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकारों का कोई स्थान नहीं है। भारत के परिवार एक अत्यंत असमान धरातल पर आधारित हैं जिसमें सबसे पहले शादी के बाद पत्नी अपनी जाति बदलती है, जहां लड़कियों को संपत्ति में अपने भाई के समान अधिकार नहीं मिलते। सभी व्यक्तियों को स्वतंत्रता और समानता प्रदान करने से परिवार का वर्तमान स्वरूप छिन्न-भिन्न हो जाएगा। अब हम विवाह की दूसरी मुख्य विशेषता पर ध्यान दें जिसे स्वाभाविक माना जाता है — यह है लिंग के आधार पर काम का विभाजन जो घर पर महिलाओं द्वारा बिना वेतन के किए गए कार्य को वैधानिक दर्जा देता है। विवाह की विचारधारा यह सुनिश्चित करती है कि मनुष्य जाति को पैदा करने और उनके द्वारा काम करने की क्षमता विकसित करने के लिए महिलाओं द्वारा किए गए शारीरिक एवं मानसिक श्रम को 'अकर्म' समझा जाए और इस प्रकार के सभी अकर्म केवल महिलाओं द्वारा किए जाते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में निहित शोषण की ओर ध्यान नहीं दिया जाता और स्वयं महिलायें भी यह बात नहीं समझ पातीं कि जब वे सब काम प्रेम के वशीभूत होकर करती हैं तो फिर वे इस कभी न खत्म होने वाली अथक मेहनत से इतनी अप्रसन्न क्यों रहती हैं?

भारत में हम नारीवादियों ने विषमलैंगिक परिवारों के महत्व को चुनौती देने से सदा ही परहेज़ किया है। यह सही है कि हमने लगातार परिवारों में महिलाओं और बच्चों के शोषण पर अंगुली उठाई है परन्तु फिर भी समान नागरिक संहिता या दहेज प्रथा पर किए गए अपने अंतक्षेपों के द्वारा हम किसी न किसी रूप से वर्तमान पारिवारिक व्यवस्थाओं को और अधिक सुदृढ़ करते रहे हैं। इन उदाहरणों में हमने विषमलैंगिक, पितृसत्तात्मक और एकल विवाह की संस्था की आलोचना नहीं की बल्कि हम केवल इसके इर्द-गिर्द विद्यमान बहुविवाह, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा जैसे विषयों को ही अपनी आलोचना का निशाना बनाते रहे।

आइये अब हम 'यौनिक व्यवहार' के विषय को देखें। समलैंगिक व्यवहार के प्रति सीमित आलोचना करने का

एक तरीका यह है कि इस बात पर बल दिया जाये कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी गोपनीयता बनाये रखने का अधिकार होता है और नारीवादियों को यह जान लेना चाहिए कि बहुत से लोग विषमलैंगिक नहीं होते। कुछ न करने से इस तरह की आलोचना करना अधिक बेहतर है परन्तु यह किसी भी तरह विषमलैंगिकता के प्रति कोई चुनौती उत्पन्न नहीं करता क्योंकि यह विषमलैंगिक व्यवहारों की अनिवार्यता को नहीं पहचानता। यदि आपस में सहमत वयस्कों का मामला हो तो यौनिक व्यवहार पूर्णतः निजी मामला है जिसमें कानून को कोई दखल नहीं देना चाहिए, इस औचित्य के पीछे यह विचारधारा निहित है कि 'यौनिकता' एक निजी मामला है और 'सामान्य' यौनिक व्यवहार प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होता है तथा इसका इतिहास या संस्कृति से कुछ लेना देना नहीं है। परन्तु यदि हम यह मान लें कि यौनिक व्यवहार संस्कृति से प्रभावित होते हैं तो हमें इस विचार का भी सामना करना पड़ेगा कि यौनिकता मनुष्य द्वारा बनाया गया व्यवहार है और यह 'प्राकृतिक' रूप से उत्पन्न नहीं होता।

अब इस संभावना पर भी गौर करें कि मनुष्य द्वारा निर्मित यौनिक व्यवहार से संबंधित नियम यातायात के नियमों की तरह अलग-अलग होते हैं ताकि किसी एक प्रकार की व्यवस्था को बनाया रखा जा सके — उदाहरण के लिए भारत में आप सड़क के बाईं ओर चलते हैं तो संयुक्त राज्य अमरीका में दाहिनी ओर। इसके आगे अगर यह कहा जाये कि आप यातायात नियमों को निर्धारित करने वाली सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह उठायें कि दिल्ली में यातायात नियमों को इस तरह तैयार किया गया है कि वे अमीरों का ध्यान रखते हैं और निर्धनों के प्रति द्वेष रखते हैं, या फिर यह कि इन नियमों से पेट्रोल की खपत करने वाले वाहनों के उपयोग को बढ़ावा मिलता है जबकि साईकिल, सार्वजनिक यातायात और पैदल चलने जैसे ऊर्जा संरक्षण के उपायों को बढ़ावा नहीं दिया जाता। सहजता, समानता और प्राकृतिक संसाधनों के दीर्घकालिक होने को आधार बनाकर आप इस तरह के यातायात नियमों और शहरी योजना की अच्छाइयों के बारे में भी बहस कर सकते हैं। कम से कम कोई भी व्यक्ति गंभीर रूप से यह नहीं कह सकता कि यातायात नियमों की कोई भी व्यवस्था प्राकृतिक होती है।

आइये, अब हम इसी विचार को यौनिकता पर लागू करें। सबसे पहले तो यदि 'सामान्य' व्यवहार इतना ही प्राकृतिक होता तो उसे व्यवस्थित रखने के लिए इतने अधिक नियंत्रणों की आवश्यकता नहीं होती। कुछ उदाहरण देखें: जेंडर के आधार पर वेषभूषा का निर्धारण। कल्पना करें कि दाढ़ी वाला कोई व्यक्ति घाघरा पहन कर किसी सार्वजनिक स्थल पर देखा जाये। इससे 'सामान्य' समाज की नींव किस तरह से हिल जायेगी जब तक कि उसे हिजड़े के रूप में न देखा जाये और अलग व्यवहार के कारण सामाजिक व्यवस्था में हाशिये पर रख दिया जाये। केवल गलत शरीर पर गलत तरह के कपड़े पहनने मात्र से प्राकृतिक और सामान्य यौनिक पहचान की जड़ें हिलने लग जाती हैं। दूसरा उदाहरणः स्कूलों, परिवारों, मीडिया, शिक्षा और धर्म के माध्यम से हमारे विचारों को अनुशासित करने का प्रयास किया जाता है। इन सभी माध्यमों से आपको यह बताया जाता है कि समान लिंग के किसी व्यक्ति के साथ यौन करने का विचार करना भी पाप, पागलपन और नियम विरुद्ध होता है। तीसरा उदाहरण: यदि अन्य सभी तरीके विफल हो जायें तो लोगों को विषमलैंगिक बनाये रखने के लिए राजकीय सत्ता बिजली के करंट लगाने जैसी शारीरिक यातनायें भी अपनाती हैं। चौथा: बहुत से कानून जैसे हमारे देश में धारा 377 का नियम जो प्राकृतिक व्यवहार के विरुद्ध किसी भी यौन व्यवहार को दंडित करता है। हमें किसी भी प्राकृतिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए नियमों की आवश्यकता क्यों होती है? क्या लोगों को खाने या सोने के लिए बाध्य करने के लिए भी कोई नियम बनाये गये हैं? परन्तु किन्हीं कारणों से आपको ऐसे नियमों की आवश्यकता होती है जो यह सुनिश्चित करे कि लोग प्राकृतिक यौन व्यवहार ही करें।

यहां रोचक तथ्य यह है कि मनुष्य जाति वास्तव में पूरी तरह प्राकृतिक जीवन नहीं जीती। ऐसा प्रतीत होता है मानो संपूर्ण सभ्यता का एकमात्र लक्ष्य प्रकृति से अधिक से अधिक दूरी बनाये रखना है। हम प्रकृति द्वारा प्रदत्त कच्चे भोजन को पकाते हैं, हम प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए बसेरे बनाते हैं, हम गर्भनिरोधकों का प्रयोग करते हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि 'अप्राकृतिक' को 'अनैतिक/गलत' के साथ समान रूप से देखने से एक कभी न खत्म होने वाली बहस होती रहती है।

यहां एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि वह कौन सी सामाजिक व्यवस्था है जिसे 'सामान्य' यौन व्यवहार के नियम व्यवस्थित रखना चाहते हैं। यह सुनिश्चित करना क्यों आवश्यक है कि पुरुष केवल महिलाओं के साथ ही वैधानिक यौन संबंध रखें? यह सुनिश्चित करने की भी क्या आवश्यकता है कि महिलायें केवल अपने विवाहित पुरुष साथियों के साथ ही यौन संबंध रखें क्योंकि हम सभी जानते हैं कि एक ही साथी के साथ संबंध रखने के नियम केवल महिलाओं पर ही लागू होते हैं।

यदि परिवार का अर्थ केवल वस्तुओं या मानसिक योगदान देने की व्यवस्था से ही है तो किसी भी व्यवहार वाले लोगों के एक समूह को परिवार माना जा सकता है। क्या यह संभव नहीं है कि मनुष्य अनेक प्रकार के यौन व्यवहारों को अपनाने की इच्छा रखते हों और विषमलैंगिकता उनमें से केवल एक व्यवहार हो। यहां विचार करने वाली बात यह है कि केवल विषमलैंगिक पितृसत्तात्मक परिवारों को ही मान्यता दी जाती है और इस तरह के परिवारों का उद्देश्य भी पुरुषों के माध्यम से संपत्ति और वंश को आगे बढ़ाना होता है। इसके लिए आवश्यक 'सामान्य' व्यवहार को राजसत्ता, नियमों और सामाजिक संस्थाओं द्वारा तैयार किया जाता है, कायम रखा जाता है और इसकी रक्षा की जाती है। यह तो प्राकृतिक या निजी व्यवहार से कोसों दूर हैं।

अन्य शब्दों में, धारा 377 में किसी असामान्य व्यवहार वाले 'क्वीयर' लोगों का वर्णन नहीं है जिनके असामान्य यौन व्यवहारों को सामान्य व्यक्ति मानव विज्ञानियों की तरह देख सकते हों। धारा 377 तो सामान्य पुरुष और सामान्य नारी के व्यवहारों के गठन से संबंधित है और यही वह आखिरी दलील है जो इस विचार को अभी तक बनाए रखे है कि 'सामान्य व्यवहार' की उत्पत्ति प्रकृति द्वारा होती है।

संभवतः हमने असामान्य यौन व्यवहार या 'क्वीयर' के विध्वंसनात्मक परिणामों पर गौर नहीं किया है। इस वक्तव्य को किसी भी भारतीय भाषा में अनुवाद नहीं किया जा सकता क्योंकि यह पश्चिमी देशों में समलैंगिक व्यवहारों के विरोधी गैर विषमलैंगिक राजनैतिक आंदोलनों से उत्पन्न हुई है। इस परिभाषा का इतिहास और जड़ें उस संघर्ष के मूल से जुड़े हैं। परन्तु यहां केवल इस शब्द को अनुवाद करने की समस्या मात्र नहीं है क्योंकि इससे ऐसे प्रश्न भी खड़े हो जायेंगे कि हम भी अपने इतिहास में झांकने का प्रयत्न क्यों नहीं करते। यहां प्रश्न है कि हम उस संघर्ष से प्राप्त अनुभवों और वहां प्रयोग में लाई जा रही इस परिभाषा का प्रयोग स्वयं को यह स्मरण कराने के लिए करें कि हमारे यहां यौन इच्छाओं को अनुभव करने, निर्मित करने और उन्हें बनाये रखने में अनेक तरह के व्यवधान और लोचता रही है। इस क्षेत्र में अध्ययन आरंभ किये जाने से आधुनिक युग से पहले की दक्षिण एशियाई सामाजिक व्यवस्थाओं में यौन पहचानों की अतृप्त होने और साम्राज्यवादी आधुनिकता की प्रक्रिया के एक भाग के रूप में विषमलैंगिक पहचान को सामान्य मान लिये जाने का पता चलता है। मैं किसी भी तरह से यह नहीं कहना चाहती कि आधुनिक युग से पहले के समय में पूरी स्वतंत्रता रही थी। मेरा सुझाव केवल यह है कि विषमलैंगिकता के अतिरिक्त किसी भी यौनिक व्यवहार को मान्यता देने से विषमलैंगिक व्यवहार जैसी व्यवस्थाओं की दृढ़ता में कमी आती है।

भारत में नारीवादी आंदोलन के सामने हमेशा समलैंगिकता को लेकर विविध चुनौतियां रही हैं। अपने उच्चतम स्तर पर भी यौनिकता के बारे में इसके उच्चतम विचार केवल 'निजी इच्छाओं का आदर करने' तक ही सीमित रहे हैं। हमने देखा है कि इस तरह के विचारों से विषमलैंगिकता ही एकमात्र विकल्प बना रहता है अर्थात 'हममें से अधिकांश लोग विषमलैंगिक हैं और कुछ दूसरे लोग ही समलैंगिक स्त्री या पुरुष हैं। विषमलैंगिक व्यवहारों को न अपनाने वाले इन दूसरे लोगों की संख्या असीमित है। परन्तु यदि हम यह जान लें कि इस 'सामान्य' प्रतीत होने वाली विषमलैंगिकता को अनेक प्रकार के सांस्कृतिक, बायो-मेडीकल और आर्थिक नियंत्रणों द्वारा निर्मित और व्यवस्थित रखा जाता है ताकि वर्ग, जाति और जेंडर की वर्तमान व्यवस्थाओं को जारी रखा जा सके तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि हम सब भी एक प्रकार से क्वीयर व्यवहार वाले लोग हैं अथवा इस तरह का व्यवहार करने में सक्षम हो सकते हैं।

आमने-सामने

क्या खूबसूरती यौनिकता का प्रतिबिम्ब है?

नंदनी राव

हाल ही में दिल्ली *के अखबार में एक रिपोर्ट छपी थी 'दिल्ली के युवा स्कूल की छुट्टियों का उपयोग कॉस्मेटिक सर्जरी कराने के लिए करते हैं।' युवा अपना ग्रीष्मकालीन अवकाश 'प्रसाधन चिकित्सा' कराने और उससे उबरने के लिए कर रहे हैं। इस लेख में कुछ अन्य बौखला देने वाले तथ्य भी दर्ज थे। इस चिकित्सा को कराने वाली लड़कियों-लड़कों का अनुपात 70:30 था। चिकित्सा का खर्च बीस हज़ार रुपयों से शुरू होता है। इस सूची में लेज़र के ज़रिए बालों की सफाई, लिपोसक्शन के माध्यम से मांस घटाना, रीनोप्लास्टी अर्थात नाक बेहतर बनाना, स्तन का माप घटाना-बढ़ाना इत्यादि शामिल हैं। इस रिपोर्ट का सबसे बौखला देने वाला पहलू है इस चिकित्सा को कराने के लिए लड़कियों को माता-पिता से मिलने वाला प्रोत्साहन। इसके बावजूद कि इस तरह की चिकित्सा करने वाले डाक्टर परिवार को युवाओं व बच्चों पर इस तकनीक के दुष्प्रभावों से परिचित करा देते हैं। कुछ दिनों पहले अखबार में एक अन्य खबर छपी थी जिसने दुनिया भर में हलचल मचाई थी। इंग्लैंड में एक नौ साल की लड़की को बोटोक्स के इंजेक्शन उसकी माता-पिता की मर्ज़ी पर नियमित रूप से लगाये जा रहे थे। इससे इस बच्ची को सौंदर्य प्रतियोगिताओं में अपनी हम उम्र लड़कियों से अधिक फायदा मिलेगा।*

ये तमाम किस्से हमारे सामने कुछ सवाल खड़े करते हैं। वह कौन सा कारण है जो इन लड़के-लड़कियों के यह चिकित्सा कराने के लिए प्रेरित करता है? आम लोगों में शरीर के 'दोषों' को 'ठीक कराने' का जुनून क्यों सवार है? क्या चपटी नाक, छोटी आंखों और थुलथुल पेट का मांस यौनिकता पर सवाल उठाता है? एक समय था जब उम्रदराज़ औरतें बुढ़ापे की झुर्रियां और 'कमियां' छुपाने के लिए प्रसाधन चिकित्सा का सहारा लेती थीं। पर अब उम्र का इस बात से कोई लेना-देना नहीं है। आजकल टीवी पर एक उम्र-विरोधी 'एंटी-एजिंग' क्रीम का इश्तहार दिखाया जा रहा है जिसमें एक तीस साल की औरत एक खास ब्रांड की क्रीम इस्तेमाल करती है और उसकी सहेली को लगता है कि इतनी छोटी उम्र में यह क्रीम गैर उपयोगी है। पर पांच वर्ष बाद दोबारा मिलने पर क्रीम लगाने वाली सहेली की जवान, दाग-धब्बे रहित त्वचा दूसरी औरत के लिए ईर्ष्या का विषय बन जाती है। विज्ञापन में उस औरत की अपनी त्वचा झुर्रियों से भरी और रूखी-बेजान दिखाई गई है। जवान दिखने वाली सहेली उसे यह सलाह देती है कि अभी देर नहीं हुई है, वह इस ब्रांड की क्रीम का इस्तेमाल करके अपना लावण्य वापस पा सकती है। विज्ञापन के ज़रिये यह दर्शाया गया है कि अब दोनों महिलाएं इस क्रीम का उपयोग करके झुर्रियों-रहित त्वचा अर्थात खूबसूरत चेहरे पा सकती हैं।

'खूबसूरती' एक अजीब सी सनक है। क्या मैं जवान, दुबली और गोरी हूं? मेरी लम्बाई सही तो है न। कहीं मैं ज़्यादा ठिगनी या लम्बी तो नहीं? मेरे चेहरे के हिसाब से मेरी आंखों का माप ठीक है न? क्या मेरे दांत ओढ़े-तिरछे हैं और उन्हें सीधा कराने की ज़रूरत है? क्या मेरे चेहरे पर कोई निशान या बदनुमा नाक, होंठ हैं जिनको सर्जरी से ठीक कराना चाहिए? अरे, पर मैं अपने स्तनों के लटकने को रोकने के लिए क्या करूंगी?

पिछले कुछ सालों से, दुनिया भर में 'खूबसूरती' का एक समरूपी मानक बनाने के प्रयास किए गए हैं। उम्र, लम्बाई, वज़न, रंग का एक वैश्विक 'आदर्श' भी स्थापित हुआ जिसका नस्ल, या शरीर के प्राकृतिक फ़र्कों के कानून से कोई लेना-देना नहीं है। कुछ समय तक खूबसूरती उद्योग से संबंद्ध लोग ही इन वैश्विक मानकों से 'पीड़ित' थे। हमने

कई अभिनेता/अभिनेत्रियों व मॉडलों को देखा है जिन्होंने अपनी ठोड़ी के लटकते मांस को 'कसवाया' है या फिर एक बाल को वापस 'उगवाया' है! और हम इन लोगों के 'दंभ' की बातें सुनकर ठहाके मारते और भूल जाते।

पर आज की स्थिति अलग है, और साथ ही गंभीर भी। आज हम बाज़ार में उपलब्ध शरीर का मांस कम करवाने के लिए किए गए 'लिपोसक्शन' या 'बोटोक्स पाउट' व 'नई वक्र' नाक पर हंसते नहीं हैं बल्कि हम भी ऐसा करना चाहते हैं।

नारीवादी फ़िल्मकार जीन किलबॉर्न अपने वृत्तचित्र *'स्टिल किलिंग अस सॉफ़्टली'* में विज्ञापनों में दिखाई जाने वाली खूबसूरत तस्वीरों का ज़िक्र करती हैं। उसका कहना है कि उत्पादनों के साथ-साथ मीडिया मूल्य, छवियां, आकांक्षाओं तथा प्यार, यौनिकता व 'सामान्यता' के सिद्धांत भी बेचता है तथा यह भी परिभाषित करता है कि हम क्या बनने तथा कैसा दिखने की ख्वाहिश रखते हैं।

हमें यह स्वीकारना होगा कि विज्ञापनों से अधिक मुनाफ़ों के दौर में कुछ अलग या 'हटके' को मानना मुश्किल है। हमारे चारों तरफ हैं— विज्ञापनों की बढ़ती तादात, बड़े-बड़े बोर्ड, होर्डिंग, पत्रिकाओं में छपे, टीवी पर प्रसारित होते विज्ञापन और ये सभी गोरी, नाजुक, जवान, दुबली लड़की की विशेषताओं का गुणगान कर रहे हैं। शुरूआत तो 1990 में 'नई भारतीय सुन्दर युवती' के मिस यूनिवर्स बनने से मची धूम से ही हो गई थी, जिससे प्रसाधन उद्योग के लिए पीछे मुड़कर देखना गैर ज़रूरी हो गया।

रही बात मानव जाति की तो उनका क्या? जब प्रकृति ने ही हमारा साथ छोड़ दिया हो तो क्या अपने ख्वाबों की पूर्ति के लिए हम कोई दूसरा रास्ता इख्तियार नहीं करेंगे? हमें 'असेंबली लाईन' साधन भी मंजूर हैं 'अगर वे मुझे मेरे ख्वाबों की मलिका बने रहने में मदद करते रहें।' फिर चाहे हम इन साधनों के इस्तेमाल से होने वाले दुष्प्रभावों पर कितनी ही खबरें पढ़ें- 'ग्लूटिओप्लास्टी' से अपने नितबों की गोलाई ठीक कराने में की कई गलत सजर्री से हुई सुंदरी की मौत पर छपी सच्चाई हो या युवाओं में 'खतरनाक' जीवनशैली से होने वाली बुलिमिया व अनोरेक्सिया जैसी बीमारियों अथवा बोटोक्स रोपण के नकारात्मक दुष्प्रभाव पर प्रसारित जानकारी हो। कोई भी बात हमारे खुद को देखने के नज़रिए में बदलाव नहीं ला सकती। जब बोटोक्स चेहरे की अनचाही लकीरों और झुर्रियों को कम करने का वादा कर रहा हो तो उसके ज़हरीलेपन से नसों पर होने वाली समस्याओं पर कौन जानकारी चाहेगा? कौन जानना चाहेगा कि शरीर की मांसपेशियों में कमज़ोरी, आंखों की धुंधली रोशनी और मूत्राशय पर नियंत्रण खत्म हो जाने की संभावना इन तरीकों के उपयोग से बढ़ती है? अच्छे समय पर 'दंभ' और बुरे समय पर 'खुद को धोखा देना' इंसानी फितरत है। जो हम देखना न चाहें उस पर पर्दा डाल देना सबसे आसान होता है।

पर यौनिकता की अभिव्यक्ति अनेकों रूपों में होती है। नाचना, खास तरीके से अपने शरीर को मोड़ना, बल खाना, हमारी चाल-ढाल सभी हमारी यौनिकता की अभिव्यक्ति में मदद करते हैं।

सवाल यह है कि हमारी विविधता और फ़र्क़ कहां खो गये हैं? क्यों गोरे रंग की लालिमा ही हमें सुन्दर लगती है? चेहरे की झुर्रियों में हमें जीवन के अनुभवों की छाप और बीते हुए कल की झलक की जगह दोष व त्रुटियां क्यों नज़र आती है? मोटा होना क्यों- कब एक विशेषण से गाली बन गया है? हमें यह सब पता ही नहीं चला।

वास्तव में अच्छा महसूस करने के लिए हमें क्या करने की ज़रूरत हैं— शारीरिक व्यायाम, खेल, वर्जिश या फिर खान-पान पर ध्यान? पानी पीने से शरीर के जीव-विष बाहर निकालने की क्षमता का विकास या त्वचा और शरीर को फायदे पहुंचाने वाले घरेलू नुस्खों पर भरोसा? कहने का मतलब यह नहीं कि हमें प्रसाधनों का उपयोग एकदम बंद कर देना चाहिए। ऐसा बिल्कुल भी नहीं। हम जब चाहें उनका इस्तेमाल करें। आत्म-गरिमा की रंगत चेहरे पर खिल जाती है और आत्म-विश्वास से भी चाल और ठवन हमें आकर्षक बनाती है। सही मायने में यही यौनिकता की अभिव्यक्ति है।

अंत में मैं यही कहना चाहूंगी- खूबसूरती एक घिसा-पिटा जुमला नहीं है। यह एक सूक्ति है जिसे हमें याद रखना है और जिस पर गहन चिन्तन भी करना है। आखिर खूबसूरती देखने वाले नज़र में होती है और यहां यह नज़र हमारी है। आत्म-आलोचना अच्छी होती है पर खुद को प्यार करना भी बहुत ज़रूरी है।

मैं अदना औरत

सुमन केशरी

आह क्या मैं ही हूं?
मैं अदना औरत
तुम्हारी उकेरी इन रेखाओं में...
पत्थरों में जान डालतीं इन मूर्तियों में...
कागज के पन्नों में छिपीं गाथाओं में...
कितने भाव हैं इन चित्रों में
और कितनी कोमलता
तुम्हारे स्पर्श में,
एक छुअन भर में
प्रस्फुटित हो जाता है तन-मन
लाज-डर के पर्दे हट जाते हैं
और मैं अनावृत्त भी तुम्हारे वलय में
सुरक्षित कालातीत तक...
जब से देखा है
तुम्हें उकेरते चित्रों को
भाव मग्न
एक-एक रेखाओं पर
तुम्हारे कोमल स्पर्शों की छुअन
मेरे भीतर की रूह
छटपटाती है...
इन रेखाओं में समा जाने को
खिल जाने को तुम्हारे भीतर,
कमलवत्
आखिर शिला देखकर ही तो रोया था,
कविमन अहिल्या के लिए।

सम्भोग

मनीषा कुलश्रेष्ठ

हे आदिम पुरुष
अपनी सहचरी इस आदिम स्त्री को,
एक जवाब दोगे
भूख क्या सिर्फ़ तुम्हारी ही होती है?
क्यों भूल जाते हो
तुम्हारी इस भूख के समानान्तर जागती
एक भूख उसकी भी होती है
जिससे बेखबर, तुम तृप्त हो, उठ जाते हो
थाली से,
वह हतप्रभ थाली में बचे
अपनी चाह के कुछ टुकड़ों को
अधखाया देखती है,
सर झुकाये समेटती है,
आस-पास बिखरी तुम्हारी
बेपरवाही की जूठन
अपनी भूख वहीं दबा, उठ जाती है
हताशा, ग्लानि और वितृष्णा के
मिले जुले भाव से,
और भोर होने तक सोचा करती है,
इस अजब सी रवायत पर
जो एक की भूख को भूख समझती है
दूसरे की भूख को चरित्रहीनता
एक हक़ से खाता है उसी थाली से
दूसरा महज़ साथ देने को
फिर यह कैसा सम्भोग है
किसने दिया है, यह नाम इसे?

लेख

साभार: पोस्टर विमेन, ज़ुबान प्रकाशन

नियामक मानदंडों और शारीरिक परिभाषाओं पर कुछ सवाल

शालिनी महाजन

इस बात पर अभी तक सहमति नहीं है कि *लेस्बियन* महिलाओं, *लेस्बियन* एवं *बायसेक्शुअल* महिलाओं, *एल.जी.बी.टी* समुदाय और फिर *क्वीयर* महिलाओं या *ट्रांसजेंडर* लोगों के मुद्दों पर महिला आंदोलन में हमने कब बात करना शुरू किया। लेकिन पिछले कुछ समय में, हमारे शब्दों और उन्हें व्यक्त करने के तरीकों में कई प्रकार के बदलाव आए हैं। इस लेख का उद्देश्य न तो ऐतिहासिक वृत्तांत सुनाना है और न ही इस मुद्दे का विस्तृत उल्लेख करना है, क्योंकि इन दोनों ही मुद्दों पर बात करने के लिए एक पूरी किताब लिखी जा सकती है। लेकिन मैं आशा करती हूं कि इस लेख के माध्यम से पिछले कुछ समय में उभरे उन राजनैतिक मुद्दों पर प्रकाश डाल सकूं जो क्वीयर - महिलावादी संगठनों (विशेष रूप से *लेस्बियन, बायसेक्शुअल* और *ट्रांसजेंडर*) के बीच परस्पर चर्चाओं और भारतीय महिलावादी आंदोलन से जन्मे हैं।

किसी भी एक जगह से शुरूआत करना मुश्किल है, पर फिर भी 1987 में, भोपाल की महिला पुलिस अधिकारियों, लीला और उर्मिला को नौकरी पर वापस रखे जाने के संदर्भ में चर्चाएं एवं उनके सहयोग के लिए लिखे गए पत्र शुरूआती समय का एक महत्वपूर्ण चरण रहा।

मैं मानती हूं कि सवाल यह नहीं है कि आंदोलन में कितनी लेस्बियन महिलाएं शामिल हैं या नहीं (वैसे वे कब शामिल नहीं थीं) या फिर यह कि वे सार्वजनिक स्तर पर अपनी यौनिकता अभिव्यक्त करती हैं कि नहीं। अन्य सभी हाशिये के समुदायों की तरह ही, यहां भी सवाल यही है कि (महिला आंदोलनों में) जिस महिला की बात की जा रही है, वह लेस्बियन या ट्रांसजेंडर हो सकती है या नहीं।

मैं महज़ मज़ाक में इस मुद्दे को केन्द्रीय सवाल नहीं बना रही। 'महिला' शब्द की परिभाषा में लेस्बियन महिलाओं को शामिल करने के लिए कई बार इन परिभाषाओं को बदला गया है।

अलग शब्दों में कहें तो, महिलावादी आंदोलन में 'महिला' की पहचान निर्धारित करना सबसे जटिल चुनौती रही है। दलित महिलाओं को हमेशा यही लगा (या उन्हें ऐसा महसूस कराया जाता है) कि वे दलित हैं ही नहीं। ऐसा ही अन्य समुदाय की औरतों, जैसे मुसलमान या अन्य धार्मिक/सामुदायिक पहचान की औरतों को भी महसूस

हुआ, क्योंकि उनकी पहचान उनके वर्ग से की जाती रही (जिसके परिणामस्वरूप कई बार कामगार महिलाओं को लगा कि वे दरकिनार हो गईं), उनके शहरी/ग्रामीण/कस्बे की निवासी होने के नाते की जाती रही उनके शादीशुदा होने या न होने से की गई। (शादीशुदा, परित्यक्ता, अलग रहने वाली, तलाक़शुदा, एकल, कभी शादी न करने की इच्छुक...), उनके उत्पीड़न की कठोरता जिसके अंतर्गत एक यौन कर्मी, जो अपने काम की परिस्थितियों और उसमें हिंसा से मुक्ति के विषय में बात कर रही थी, के मुकाबले (देह व्यापार के परिणामस्वरूप) वेश्यावृत्ति में ज़बरदस्ती धकेली गई महिला पर अधिक दया दिखाई जाती रही। और इसी प्रकार के अन्य कई उदाहरण।

उपरोक्त विषयों से जुड़ा राजनैतिक सवाल यह है कि शुरूआती समय में ही यह पता चल गया था कि हालांकि हम सभी नारीवादी थे (अपनी-अपनी तरह के) और कार्यकर्ता थे (हम में से काफी लोग अन्य आंदोलनों से आए थे, जिसके कारण 1980 के दशक में नारीवादी आंदोलन को उसका रंगीन एवं जीवंत स्वरूप मिला), देश में कई प्रकार की महिलाएं थीं और कई नारीवादी आंदोलन भी। हमारे लिए ज़रूरी था कि हम जल्द से जल्द इस विभाजन की पहचान कर अपनी ताकतें मिलाकर अपनी अपनी राजनीति को पुनः परिभाषित करते। क्योंकि महिलाएं होने के साथ-साथ, हमारी वास्तविक्ताओं में कई अन्य पहचानें जुड़ीं थीं, जिन्हें हम नारीवादी आंदोलन के लिए पीछे छोड़ने को तैयार नहीं थे।

अपने मुद्दों और अपनी राजनीति का मसौदा पुनः तैयार करने की इस प्रक्रिया में लेस्बियन महिला ने काफी देर से प्रवेश किया। परंतु पिछले एक दशक में (एक-दो साल इधर उधर होने के अतिरिक्त), इसका काफी प्रभाव रहा है और इस लेख में मैं इसी से संबंधित कुछ मुद्दों की चर्चा करूंगी।

लेस्बियन और बायसेक्शुअल मुद्दों पर संगठनात्मक कार्य की शुरुआत 1980 के दशक के अंत से, दिल्ली समूह व कुछ मुंबई की महिलाओं के साथ हुई। फिर दिल्ली में 1991 में सखी समूह की स्थापना हुई। स्त्री संगम (जो अब लेबिया के नाम से जाना जाता है) 1995 में गठित हुआ जब देश के कुछ अन्य शहरों में भी समूहों का गठन शुरू हो गया, जैसे, पुणे, दिल्ली, कोलकाता, बंगलुरू, केरल और फिर वडोदरा में भी।

इन समूहों ने अलग अलग कार्य शैली और संगठनात्मक रूप से काम किया, जिनमें से कुछ का यहां वर्णन करना उपयुक्त होगा।

- स्वायत्त गैर-फंड वाले संगठन जैसे मुंबई में स्त्री संगम, पुणे में ओलावा, बंगलुरू में प्रेरणा (जिनमें से कुछ को पूर्व स्थापित महिला संगठनों से सहयोग मिला और कुछ को नहीं)।
- स्वायत्त संगठन, जिन्होंने कुछ विशिष्ट काम करने के लिए आर्थिक सहयोग लिया या जो पंजीकृत हैं, जैसे कोलकाता में सैफो फ़ॉर इक्वॉलिटि, केरल में सहयात्रिका और वडोदरा में प्रेरणा।
- सेवाएं प्रदान करने वाली गैर सरकारी संस्थाएं (जो *एल.जी.बी.टी.* समूहों या मानवाधिकार समूहों के अंतर्गत ही गठित हुए), जैसे दिल्ली में संगिनी (नाज़ फाउन्डेशन के अंतर्गत), मुंबई में आंचल (शुरूआत में इंडिया सेंटर फॉर ह्यूमन राईट्स एंड लॉ के अंतर्गत, जो बाद में स्वतंत्र रूप से काम करने लगी), मुंबई में ही हमजिंसी (यह भी इंडिया सेंटर फॉर ह्यूमन राईट्स एंड लॉ के अंतर्गत) और बंगलुरू में लैस्बिट ग्रुप (संगमा के अंतर्गत)।
- यौनिकता अधिकारों के मुद्दों पर काम करने वाली संस्थाएं, जैसे दिल्ली में क्रिया और तारशी।
- विशिष्ट नेटवर्क एवं मंच (जो किसी खास मुद्दे या सांझी राजनीति पर आधारित थे) जैसे, दिल्ली में कलेरी एवं वॉईसिज़ अगेन्स्ट 377 तथा कोलकाता में सैफो फॉर इक्वॉलिटि।

इसके अतिरिक्त कई समूह अन्य महिला संगठनों तथा एल.जी.बी.टी. समूहों के साथ मिलकर विभिन्न नेटवर्कों तथा मंचों में भी काम करते हैं।

इन समूहों के काम का एक मुख्य अंश रहा है चाहत और अधिकारों के विषय में अभियान चलाना। इसके साथ-साथ, *एल.बी.टी.* समूहों के मुद्दों में विभिन्न स्तरों पर फैलाव आता रहा है जैसा - नियामक मानदंडों पर सवाल

उठाना, हमारे अधिकारों की मांग रखने और शारीरिक परिवेश को स्पष्ट करने के लिए राजनैतिक भाषा का विकास करना, वर्तमान आंदोलनों एवं अभियानों के साथ साझे मुद्दे तैयार करना और उनके साथ मिलकर काम करना, एक प्रगतिशील एवं बहुमुखी राजनीति का विकास, विविध सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के लिए उपयुक्त जगह बनाना और क्वीयर समुदाय की विशिष्ट आवश्यकताओं के लिए सेवाएं प्रदान करना।

इसके अतिरिक्त, क्वीयर एवं क्वीयर नारीवादी आंदोलनों ने विभिन्न प्रकार के दस्तावेज़, किताबें, अध्ययन और रिपोर्ट प्रकाशित किए हैं जो यह समझने में हमारी मदद करते हैं कि हम किस दिशा में बढ़ रहे हैं। इनमें से कई प्रकाशन अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर छापे गए हैं, या अभियानों एवं बढ़े संगठनों का हिस्सा रहे हैं। इस तरह यौनिकता एवं जेंडर के मुद्दे धीरे-धीरे बदलाव की नई राजनीति का हिस्सा बन रहे हैं।

अब तक इस विस्तृत काम के माध्यम से कुछ महत्वपूर्ण राजनैतिक मुद्दे उठाए गए हैं:

- उन महिलाओं के विषय में बात करना जो शादी नहीं करना चाहतीं या अपने पैतृक या वैवाहिक घर से बाहर के क्षेत्र के अधिकारों के विषय में बात करना चाहती हैं; विवाह के सामाजिक ढांचे और नियामक विषमलैंगिकता का आलोचनात्मक विश्लेषण; 'निजी ही राजनैतिक है' को दोहराते हुए 'राजनैतिक ही निजी है' अवधारणा का भी पुर्नावलोकन, जिसके अंतर्गत यौनिकता तथा विवाह संबंधी विशेषाधिकारों पर ध्यान आकर्षित किया गया (जैसा कि पहले जाति, वर्ग और समुदाय के संदर्भ में किया गया था)।
- औरतों की चाहत और यौनिकता के मुद्दों को चर्चा में लाना, जो केवल उन पर होने वाले उत्पीड़न या हिंसा के नज़रिए पर ही केन्द्रित न हों।
- शरीर को एक कामुक विषय वस्तु एवं उसकी विविधता को पहचानना (औरतों और मर्दानगी के विषयों पर चर्चा से ही वाद-विवाद बदल जाता है)।
- 'महिला' की अवधारणा पर सवाल उठाना जिसके अंतर्गत लिंग/जेंडर के उन नियामक मानदंडों पर चर्चा हुई जिसे भारतीय नारीवादी आंदोलन ने भी स्वीकार कर लिया था।

इन मुद्दों का और अधिक विस्तार से अध्ययन करना आवश्यक है।

सबसे पहले नियामक विषमलैंगिकता का मुद्दा। नारीवादी आंदोलन ने हमेशा से पितृसत्ता एवं उससे जुड़े सामाजिक ढांचों की आलोचना की है, खासकर विवाह के सामाजिक ढांचे की। महिला मज़दूरी, उत्पादकता एवं प्रजनन, घरेलू हिंसा, जेंडर नियामक मानदंड एवं रूढ़िवादी ढांचे और उन्हें तोड़ना पिछले तीन दशकों के अभियानों के महत्वपूर्ण मुद्दे रहे हैं। विवाह के ढांचे में महिलाओं का दर्ज़ा अक्सर इस पितृसत्तात्मक ढांचे से मिलने वाली ताकत के नज़रिए से देखा गया है।

पिछले कुछ वर्षों में विवाह के ढांचे की आलोचना एक ऐसे ढांचे के रूप में की गई है जो महिलाओं को भी कुछ सामाजिक एवं व्यक्तिगत शक्तियां प्रदान करता है और विषमलैंगिक-पितृसत्ता को बढ़ावा देते हुए उसका नियंत्रण भी करता है। यह आलोचना इस ढांचे से बाहर रह रहे लोगों ने दी है, अधिकतर क्वीयर तथा यौन कर्मियों के आंदोलन द्वारा, जो अपने आप को उस समाज के हाशिए पर खड़ा महसूस करते हैं, जिस समाज में विवाह और उससे परिभाषित परिवार को समाज एवं संस्कृति का केन्द्र माना जाता है। यहां यह कहना आवश्यक है कि स्वायत्त नारीवादी आंदोलन, जिसे मुख्यधारा महिला आंदोलन का उग्र-रूपी किनारा माना जाता है, ने इन विषयों पर काफी तत्परता से चर्चा बढ़ाई है और वे इन्हें अपनी राजनीति में शामिल करने के लिए भी तैयार हैं।

इस मुद्दे के आधार पर विवाह की आलोचना करने का मतलब है उस सामाजिक एवं सांस्कृतिक शक्ति को चुनौती देना, जो विवाह के ज़रिए औरतों को मिलती है, चाहें विवाह के रिश्ते में बंधे दोनों व्यक्तियों में से उन्हें मिली शक्ति न्यूनतम ही क्यों न हो। यह शक्ति विभिन्न सामाजिक एवं कानूनी अधिकारों का भी कारण बनी है, जो उन औरतों को उपलब्ध नहीं है जो विवाह के ढांचें में बंधने के लिए तैयार नहीं हैं या उससे बाहर छूट गई हैं।

लेकिन विवाह के आलोचनात्मक विश्लेषण के कारण समलैंगिक विवाह के मुद्दे से संबंधित कुछ विशिष्ट चर्चाओं

को भी बढ़ावा मिला है। एक महत्वपूर्ण सवाल, जो नारीवादियों ने भी क्वीयर समूहों से पूछा है— यदि आप विवाह का विरोध करते हैं, और अगर वह विषमलैंगिक पितृसत्ता का इतना मज़बूत स्तंभ है, तो आप समलैंगिक विवाह की मांग क्यों करते हैं? क्या लेस्बियन एवं गे समुदाय का इससे दूर ही रहना उचित नहीं है?

इस प्रश्न के विविध उत्तर रहे हैं जो केवल क्वीयर-नारीवादियों ने ही नहीं दिए हैं, बल्कि अन्य समूहों ने भी दिए हैं। हां, हमने विवाह के ढांचे की आलोचना तो की है और हम इसे एक दमनकारी ढांचा मानते हैं, परंतु वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में, अपने जन्मदायक/दत्तक परिवार के अतिरिक्त परिवार स्थापित करने का यही एक ढांचा उपलब्ध है और इसी ढांचे के अंतर्गत वे अधिकार प्राप्त किए जा सकते हैं जो केवल वैवाहिक युगल को उपलब्ध हैं। तो जब तक कुछ लोगों को यह अधिकार उपलब्ध है कि वे विवाह कर सकें, उनके रिश्ते को सामाजिक एवं कानूनी मान्यता प्राप्त हो, तब तक हमारा मानना है कि यह अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को, बिना लैंगिकता का भेदभाव किए उपलब्ध होना चाहिए।

यहां उपयुक्त उदाहरण होगा, देश भर में घर से भाग कर "शादी" करने वाली लेस्बियन औरतों का, जिसे मीडिया बड़ी दृढ़ता से नियमित रूप से दिखाती है। देश के हर कोने से, शहरों व गांवों से, अपने परिवारों व समाज के विरोध का सामना करती हुई औरतें, अधिकतर बिना किसी सहयोग के, एक दूसरे के साथ रहने का प्रयास कर रही हैं, एक दूसरे के साथ रहने की अपनी चाह की अभिव्यक्ति कर रही हैं, शादी कर रहीं हैं और उन्हें अपने हिसाब से अपनी ज़िंदगी जीने का पूरा अधिकार है। जिन मामलों में वे ऐसा नहीं कर पा रही हैं, वहां वे परिवार छोड़ कर भाग जाती हैं, मीडिया को संपर्क करती हैं जिससे कि उनके परिवार उनके लिए खतरा न पैदा कर सकें, और कुछ दुःखद मामलों में एक साथ न रह पाने के कारण आत्महत्या करने के लिए भी विवश हो जाती हैं। जब तक वैवाहिक ढांचे हमारे समाज, संस्कृति और कानूनी परिवेश को परिभाषित करते रहेंगे, यही न्यायोचित होगा कि यह ढांचे सभी के लिए उपलब्ध हों, चाहें वे समलैंगिक हों या विषमलैंगिक।

साथ ही, हमारा यह आह्वान है कि यदि विभिन्न महिला आंदोलन हर प्रकार के विवाह और उससे मिलने वाले लाभों का अंत करने के लिए तैयार है, तो उन समुदायों के लिए विवाह की मांग करने की आवश्यकता नहीं है, जिन्हें वैसे भी यह ढांचा उपलब्ध नहीं है।

अब हम एक नज़र चाहत और एल.बी.टी. समूहों द्वारा इस विषय की अभिव्यक्ति पर डालते हैं। कई मायनों में, पहचान का आधार भी चाहत, शरीर, यौनिकता ही है। इसका यह मतलब नहीं है कि लेस्बियन की परिभाषा केवल इसी पर आधारित है, परंतु अन्य पहचानों, जिनमें हमारा जन्म होता है या जो हमारी परिस्थितियों के कारण हम से जुड़ जाती हैं, के मुकाबले इस संदर्भ में कुछ हद तक 'चुनाव' की भ्रांति होती है (यौन कर्मियों को भी चुनाव के इस सवाल का सामना करना पड़ता है जब वे 'सुधार' या 'पुनर्वास' कार्यक्रमों का हिस्सा बनना नहीं चाहते, बल्कि अपने अधिकारों व मांगों की बात करते हैं)। इस चर्चा का उद्देश्य यह स्थापित करना नहीं है कि कोई व्यक्ति जन्म से समलैंगिक होता है या समलैंगिक बन जाता है; यह सवाल कभी भी एल.बी.टी. संगठनों के लिए महत्वपूर्ण नहीं रहा है। लेकिन यह सवाल धार्मिक लोगों के लिए महत्वपूर्ण है (अगर कोई इस प्रवृत्ति के साथ जन्म लेता है, तो उसके पास और कोई चारा नहीं है; वह केवल ऐसा बर्ताव न करने का निर्णय ले सकता है) या फिर समलैंगिक-विरोधी भय रखने वालों के लिए (किसी हादसे/विकृति/या नाकामयाबी के कारण व्यक्ति ऐसा बन गया हो, क्योंकि यह अप्राकृतिक है और इसलिए सामान्य नहीं हो सकता) या फिर आनुवांशिक समलैंगिक-विरोधी भय रखने वालों के लिए (तो ऐसे जीन के कारण ऐसा होता है, हमें उसकी पहचान कर उसे नष्ट कर देना चाहिए)।

यहां एक साधारण तथ्य रखा जा रहा है कि लेस्बियन जीवन जीने का चुनाव करना, या अपनी लेस्बियन पहचान व्यक्त करना, अपने आप में 'बाहर आने' की एक प्रक्रिया है, क्योंकि इस पहचान को एक चुप्पी साध कर छुपा हुआ रखा जा सकता है। यह चुप्पी कई क्वीयर लोगों के लिए आज भी वास्तविकता है (तभी तक जब तक वे प्रत्यक्ष रूप से नियामक परिभाषाओं के अनुरूप न दिखते हों, जिससे जुड़ी अपनी समस्याएं हैं)। कुछ शुरूआती नारीवादियों की मान्यता के विरुद्ध, जो यह मानते थे कि यह चुप्पी भी एक

प्रकार की ताकत है क्योंकि इससे महिलाओं की स्थिति छुपी रहती है और सुरक्षित रहती है, आंदोलन के पिछले दशक में बार बार यह दोहराया गया है, और इन संगठनों के अनुभवों से यह प्रमाणित भी होता है कि अधिकतर क्वीयर औरतों के लिए यह चुप्पी हिंसात्मक है, ताकत देने वाली शक्ति नहीं और ज़्यादातर निजी स्थान (घरों व परिवारों के अंदर) हिंसा और शोषण के स्थान होते हैं।

इसलिए एल.बी.टी. अधिकारों के विषय पर बात करना भी एक प्रकार से आंदोलन के अंतर्गत/और पहचान स्थापित करने के संदर्भ में बाहर आने जैसा ही है, जिसके विषय में यदि बात न की जाती तो वह अदृश्य ही रहता।

लेकिन यहां चर्चाओं में केवल यौनिक शरीर की बात नहीं की गई, शरीर किस प्रकार का हो, इस अवधारणा को भी चुनौती दी गई। विभिन्न समूहों और उनके द्वारा बारीकी से चुनी गई परिभाषाओं ने हमारे शरीर के विषय में हमारी अवधारणाओं और समझ को बदलने में मदद की है, वह शरीर जिसे हमारी राजनीति बार बार परिभाषित करती है। दलित महिला के शरीर पर उच्च जाति के पुरुषों द्वारा की जाने वाली हिंसा और यौन कर्म संबंधी चर्चाओं के संदर्भ में यह परिभाषाएं दी जाती रही हैं। हिंदुत्व राजनीति की नारीवादी आलोचना में मुसलमान पुरुषों और महिलाओं तथा हिंदू पुरुषों के शरीरों की अवधारणा पर ध्यान आकर्षित करते हुए गुजरात नरसंहार के दौरान इसके उग्र स्वरूप का वर्णन किया गया है। नारीवादी लेखों में भारत-पाकिस्तान बंटवारे और उसके बाद की हिंसा के विश्लेषण ने भी हमारी समझ बढ़ाने में मदद की है।

वंश, राष्ट्र, समुदाय, वर्ग, जाति की अवधारणाओं विषयक हमारी समझ को विकसित करने में महिला और महिला शरीर का इन अवधारणाओं के अंतर्गत संदर्भ ने काफी मदद की है। विरोध की हमारी समझ भी इन्हीं शरीरों के विरोध प्रकट करने, बदलाव और ताकत पर आधारित रही है।

महिला/पारलिंगी शरीर के विषय ने इन चर्चाओं में महत्वपूर्ण पहलू जोड़े हैं, जिसमें चाहत के साथ-साथ स्त्री/पुरुष व्यक्तित्व का पहलू भी शामिल है। हांलांकि जेंडर भूमिकाओं और हमारे 'औरत बनने' की काफी आलोचना की गई है जिसका महिला आंदोलन ने विरोध भी किया है, कि औरतों या उनकी सुंदरता के क्या मानक निर्धारित किए गए हैं; परंतु साथ ही 'पुरुषत्व' और 'पुरुष व्यवहार' का भी काफी विश्लेषण हुआ है, और ज़्यादातर यही माना जाता है कि यह व्यवहार अवांछनीय है। (जो हमें सोचने पर विवश कर देता है कि यदि यह व्यवहार अवांछनीय है तो विषमलिंगी नारीवादी 'पुरुषत्व' और उनके वाहक पुरुषों के प्रति अपनी अनिच्छा को जीवन में कैसे स्वीकर कर लेते हैं? या यह सवाल पूछना गलत है, चूंकि इससे 'विषमलैंगिकता-विरोधी भय' या 'पुरुष-घृणा' जैसे विचारों का आभास होता है?)

सच तो यह है कि नारीवादियों की पुरुषत्व के प्रति यह विकलता उन महिलाओं के प्रति प्रकट होती है जो 'नारीत्व' के नियामक मानदंडों का पालन नहीं करतीं और यहीं से सवाल उठता है कि नारीवाद में खुद कितना नारीत्व है। कई पीढ़ियों से कई महिलाएं पुरुषत्व के प्रति दावे करती आई हैं (पर पुरुष होने की ताकत से नहीं, और इन दोनों में भेद स्थापित करना ज़रूरी है) और कर रही हैं। मेरे अनुमान से, हमारे बीच यह चर्चा 'बुच' और 'फैम' शब्दों के उपयोग से शुरू हुई। लेकिन यह चर्चा जल्द ही जटिल होने के साथ-साथ अत्यंत विवादपूर्ण बन गई। तो कुछ लोगों ने इन शब्दों में बदलाव करके 'बुची-फैम्स', 'फैम्मी-बुचेज़', 'फच' और 'बैम्मे' बना दिया, पर काफी औरतों ने इस शब्दावली को अपनाने से ही इंकार कर दिया, खासकर यदि चर्चा रिश्तों के अंदर दोनों व्यक्तियों की भूमिकाओं से संबंधित होती।

लेकिन इस विषय पर बढ़ती चर्चाओं में यह स्थापित हो गया कि पुरुषत्व और नारीत्व एक व्यक्ति की जेंडर पहचान, उसके अपने शरीर व व्यक्तित्व, उसकी जेंडर अभिव्यक्ति तथा जेंडर व्यवहार से संबंध रखते हैं। यह सभी मुद्दे अपने आप में काफी जटिल हैं लेकिन हमारे जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण भी हैं क्योंकि हमारे आसपास की दुनिया इन्हें देखती है। चूंकि हमारे व्यक्तित्व तथा शरीर की अभिव्यक्ति सांस्कृतिक रूप से नियामक जेंडर पर आधारित है, हमारे लिए खुद को व्यक्त करने के खतरे और भी बढ़ जाते हैं। दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि आम जीवन के तथ्य महिला आंदोलन में भी वैसे ही कायम हैं।

अतः सार्वजनिक एवं निजी स्तरों पर जेंडर व्यवहार के प्रति जेंडर विविधता तथा खुलापन अपनाने में समय

लगता है, हांलांकि समाज में रहने के लिए इन्हें मंज़ूरी प्राप्त रहती है। औरतों द्वारा पुरुषत्व व्यवहार को अक्सर पुरुषों की ताकत स्थापित करने का कारण बनाया जाता है, जो कि जेंडर जैसे जटिल मुद्दे की सरलीकृत व्याख्या है। इस अवधारणा को निरंतर चुनौती दी गई है और ट्रांसजेंडर समूहों व व्यक्तियों के साथ चर्चाओं ने इसमें अब तक अदृश्य कई पहलू जोड़ने में मदद की है।

इससे मैं अपने दूसरे मुख्य तर्क पर पहुंचती हूं, कि क्वीयर समूहों तथा राजनीति ने महिला आंदोलन/नों का मूल आधार बदल दिया है — उनका यह विचार की शरीर की एक निर्धारित परिभाषा है और उससे संबंधित राजनीति स्थिर है!

महिलाओं और उनके संदर्भ में वर्ग, समुदाय, जाति आदि को परिभाषित करने के अतिरिक्त, महिला आंदोलनों ने 'लिंग' एवं 'जेंडर' के बीच अंतर किया है, जिसके अंतर्गत यह समझने की कोशिश की गई है कि 'मर्द' और 'औरत' की अवधारणाएं स्थापित करने में विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाओं का योगदान है जिनके कारण कई सामाजिक, सांस्कृतिक ताकतों का फ़र्क़ इनमें निहित बन जाता है। अतः विभिन्न अभियानों और उनकी राजनीति में विभिन्न स्तरों पर होने वाली सामाजिक प्रक्रियाओं के प्रभावों पर ध्यान दिया गया है, जो काफी निजी तथा ढांचागत मुद्दों को प्रभावित करते हैं; इसके अतिरिक्त, कैसे इन ताकत के मुद्दों व उन पर आधारित ढांचों से जुड़े मुद्दों को हल करके इस दुनिया को और अधिक तुल्य तथा न्यायसंगत बनाया जा सकता है।

पर अभी तक जो मुद्दा सुलझ नहीं पाया है, वह है यौन संबंधों के नियामक स्वरूप का मुद्दा कि हम निर्धारित प्रकार के शरीरों में जन्म लेते हैं, कि केवल दो लिंग ही संभव हैं — जिसके कारण कई लोगों को या उनकी यौन अभिव्यक्ति को 'अप्राकृतिक' घोषित कर दिया जाता है और जो नियामक विषमलैंगिकता का आधार बन जाता है, और जो हमारी चाहत को ज़बरदस्ती अपने 'विलोम' के प्रति आकर्षित होने के लिए विवश करता है।

पिछले कुछ वर्षों में एल.बी.टी. समूहों, ट्रांसजेंडर एवं हिजड़ा समूहों तथा कुछ नारीवादियों तथा नारीवादी समूहों ने यह मुद्दे उठाए हैं। यहां तक कि, सातवीं राष्ट्रीय महिला आंदोलनों की संगोष्ठी की तैयारियों के दौरान, हिजड़ा एवं अन्य ट्रांसजेंडर लोगों की भागीदारी एक ज्वलंत मुद्दा रहा। सितंबर 2006 में जब यह संगोष्ठी हुई तब तक काफी हद तक इस मुद्दे पर एक असंतोषजनक सहमति बन चुकी थी कि वे हिजड़ा एवं ट्रांसजेंडर लोग, जो राजनैतिक रूप से महिला के रूप में अभिव्यक्ति करते हैं, वे संगोष्ठी में भाग ले सकते हैं।

अंततः कई हिजड़ा एवं ट्रांसजेंडर लोगों ने संगोष्ठी में भाग लिया और उनके महिलाओं के मुद्दों की समानता पर काफी चर्चाएं भी हुईं। 'जेंडर पर सवाल' नामक एक सत्र में इस विषय पर चर्चा हुई कि क्या जन्म के आधार पर स्त्रीलिंग की श्रेणी को हटा दिया जाना चाहिए, और अगर हां तो महिला समूहों और कार्यकर्ताओं के लिए इसके क्या परिणाम होंगे। संगोष्ठी के समापन सत्र में महिला आंदोलनों के समक्ष इन चुनौतियों को स्वीकार किया गया और यह माना गया कि इससे 'महिला' होने के राजनैतिक विषय पर कई सवाल उठते हैं। इस संगोष्ठी के मंच से दलित महिलाओं, विकलांग महिलाओं, यौन कर्मियों के साथ-साथ लैस्बियन एवं ट्रांसजेंडर महिलाओं ने भी 'महिला' होने के नए आयामों के आधार पर समाज में अपनी जगह बनाने का आह्वान किया।

अब यहां से हम आगे कैसे बढ़ें? हम, नारीवादी होने के नाते, इतिहास के एक ऐसे रोमांचक मोड़ पर खड़े हैं जब जेंडर एवं लिंग की नई परिभाषाएं हमारी अपनी अवधारणाओं को पुनः परिभाषित करने पर मजबूर कर रही हैं। इससे उठने वाले जटिल सवालों के उत्तर ढूंढना असान नहीं है। खासकर ऐसी स्थिति में, जहां नारीवाद की पारंपरिक परिभाषा पर ही प्रतिघात हो रहे हैं। कोशिश यह है कि अब तक विकसित हुई समझ खोए बिना आगे का रास्ता ढूंढा जाए।

इसका सबसे सकारात्मक पहलू यह है कि यौनिकता एवं जेंडर से जुड़े मुद्दे धीरे-धीरे, लेकिन निरंतर बदलाव की नई राजनीति का हिस्सा बनते जा रहे हैं। आज हमारे सामने केवल यह उद्देश्य नहीं है कि विविध यौनिकताओं और जेंडर के परिपेक्ष्य में दुनिया को और तुल्य तथा न्यायोचित बनाया जाए, बल्कि यह भी कि यौनिकता एवं जेंडर की सामाजिक-राजनैतिक और सांस्कृतिक परिभाषाएं भी बदलें।

हिंदी अनुवादः निधी अग्रवाल

यौनिक स्वास्थ्य व अधिकार - कुछ आधार

यौनिक स्वास्थ्य

यौनिकता और यौनिक स्वास्थ्य की धारणाएं प्रायः एक दूसरे के स्थान पर अदल-बदल कर प्रयोग की जाती हैं, यद्यपि, यौनिक स्वास्थ्य यौनिकता का ही एक अंग है। यौनिक स्वास्थ्य की एक परिभाषा हैः

"यौनिक स्वास्थ्य स्त्रियों और पुरुषों द्वारा अपनी यौनिकता को अभिव्यक्त करने व उसका आनन्द लेने की, और ऐसा, अनचाहे गर्भ, ज़ोर-ज़बदस्ती, हिंसा और भेदभाव के बिना तथा यौन संबंधी बीमारी के जोखिम से मुक्त हो, कर पाने की क्षमता है। यौनिक स्वास्थ्य का अर्थ आत्मसम्मान, मानव यौनिकता की एक सकारात्मक सोच, और यौनिक संबंधों में आपसी सम्मान पर आधारित एक सूचित, आनंदमय और सुरक्षित यौनिक जीवन व्यतीत कर पाना भी है। यौनिक स्वास्थ्य, जीवन, निजी संबंधों और यौनिकता पर आधारित पहचान की अभिव्यक्ति में वृद्धि करता है। यह सकारात्मक रूप से वृद्धिपरक है, इसमें आनंद सम्मिलित है, और यह स्वाधीनता, संचार तथा संबंधों को निखारता है।"

— हैल्थ, एम्पावरमेंट, राइट्स एण्ड अकांउटेबिलिटी - हेरा स्टेटमेंट

इस प्रकार यौनिक स्वास्थ्य संपूर्ण खुशहाली का संकेत देता है। यौनिक स्वास्थ्य की इस समझ को मानें, तो सेवाएं और कार्यक्रम सर्वोत्तम यौनिक स्वास्थ्य को और यौनिकता के सकारात्मक दृष्टिकोण को बढ़ावा दे सकते हैं। यह कार्य स्त्रियों-पुरुषों के एवं लड़कियों और लड़कों को निम्नलिखित के लिए प्रोत्साहित करने के द्वारा किया जा सकता है।

- अपने शरीर व अपनी यौनिकता को स्वीकारना और उसके साथ सहजता से जीना।
- स्वंय यह तय कर पाना, कि कब और कैसे आपसी सहमति से संबंध/संबंधों को बनाना है और/या यौनिक क्रियाओं में भाग लेना है।
- अपने मूल्यों के बारे में स्पष्टता और दूसरों के मूल्यों का सम्मान करना।
- अपनी आवश्यकताओं को अपने साथी/साथियों की आवश्यकताओं की समझ होना।
- अपनी यौनिक आवश्यकताओं को अपने साथी/साथियों के सामने सम्मानजनक तरीके से रखना।
- बिना ग्लानि, डर और शर्म के यौनिक आनन्द लेना।
- दूसरों के अधिकारों, स्वायत्तता, यौनिक प्रवृतियों, प्राथमिकताओं और मूल्यों का सम्मान करना।
- दूसरों के शरीर व शारीरिक निष्ठओं का आदर करना।
- अपनी यौनिकता को बिना हिंसा, ज़ोर-ज़बरदस्ती या शोषण के अभिव्यक्त करना।
- अपने आपको व अपने साथी/साथियों के संक्रमण व बीमारियों से बचाना।
- यह तय करना कि यदि बच्चे चाहिए, तो कब और कितने।
- यौनिक स्वास्थ्य को बढ़ाने और श्रेष्ठतम बनाने के लिए सूचना, सेवाओं, संसाधनों और विकल्पों को ढूंढना।

यौनिक अधिकार

"यौनिक अधिकार मानव अधिकारों के मूलभूत तत्व हैं। इनमें आनंदमय यौनिकता को अनुभव करने का अधिकार शामिल है, जो अपने आप में आवश्यक है, और इसके

साथ ही यह लोगों के बीच संवाद और प्रेम का मूल माध्यम है। यौनिक अधिकार, यौनिकता के ज़िम्मेदार प्रयोग में स्वाधीनता और स्वायत्ता के अधिकार को सम्मिलित करते हैं।" —हेरा स्टेटमेंट

क्योंकि यौनिकता मानव होने का एक बुनियादी हिस्सा है, यौनिक अधिकारों की धारणा मानव अधिकारों के व्यापक ढाँचे का अंश हैं। मानव अधिकार सब लोगों के जीवन के सभी पहलुओं में गरिमा, महत्व, सम्मान, समानता, तथा स्वायत्तता को स्वीकार करते हैं। स्त्रियों व पुरुषों को अपनी यौनिकता को अभिव्यक्त करने तथा आनंद उठाने के लिए और यौनिक स्वास्थ्य संबंधी जानकारी, शिक्षा और सेवाओं की पहुंच के द्वारा संपूर्ण स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए यौनिक अधिकार आवश्यक हैं इसलिए —

- यौनिक अधिकार विशेष सुविधा या उपकार नहीं हैं, बल्कि ये सभी स्त्रियों और पुरुषों की हक़दारी है।
- यौनिक अधिकार व्यक्ति व समूह दोनों की सुरक्षा करते हैं।
- मानव अधिकारों की तरह यौनिक अधिकारों की धारणा गैर-भेदभाव को सुनिश्चित करने के लिए एक ढांचा उपलब्ध कराती है। इसलिए इसका उपयोग किसी एक व्यक्ति या समूह को दूसरे की तुलना में अधिक महत्व देने के लिए नहीं किया जा सकता है।
- यौनिक अधिकार दूसरे अधिकारों की तरह मान्य हैं, जैसे कि भोजन, स्वास्थ्य और आवास का अधिकार।
- यौनिक अधिकार- शारीरिक निष्ठा जैसे अधिकार, साथ ही ऐसे अधिकार जो उल्लघंनों के विरुद्ध बचाव प्रदान करते हैं, जैसे कि यौनिक क्रिया में ज़बरदस्ती न करने देने का अधिकार, की हक़दारी को निश्चित करते हैं।

यौनिक अधिकार कुछ नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं। ये सिद्धान्त इस प्रकार हैं:

- शारीरिक निष्ठा (बॉडिली इनटेगरिटि)- अपने शरीर पर नियंत्रण और सुरक्षा का अधिकार। इसका अर्थ है कि सभी स्त्रियों और पुरुषों को न केवल अपने शरीर को हानि से बचाने का बल्कि अपने शरीर का पूरा संभावित आनंद उठाने का अधिकार।
- स्वाधिकार (परसनहुड)- स्वाधीनता का अधिकार। इसका अर्थ है कि सभी स्त्रियों और पुरुषों को न केवल अपने शरीर को हानि से बचाने का बल्कि अपने शरीर का पूरा संभावित आनंद उठाने का अधिकार है।
- समानता (इक्वॉलिटि)- सभी व्यक्ति समान हैं और उन्हें आयु, जाति, वर्ग, प्रजाति, जेन्डर, शारीरिक योग्यता, धार्मिक या अन्य विश्वासों, यौनिक प्रवृति तथा अन्य ऐसे कारणों पर आधारित भेदभावों के बिना मान्यता दी जानी चाहिए।
- विविधा (डायवर्सिटी)- भिन्नता के लिए आदर। लोगों की यौनिकता और उनके जीवन के अन्य पहलुओं में विविधता भेदभाव का आधार नहीं होनी चाहिए। विविधता के सिद्धान्त का दुरुपयोग पिछले तीनों नैतिक सिद्धान्तों के उल्लघंन के लिए नहीं होना चाहिए।

यौनिक अधिकारों में शामिल हैः

- किसी संक्रमण, बीमारी, अनचाहे गर्भ या हानि के डर के बिना यौनिक आनन्द का अधिकार।
- यौनिक अभिव्यक्ति का अधिकार और अपने निजी, नैतिक और सामाजिक मूल्यों के अनुरूप यौनिक निर्णय लेने का अधिकार।
- यौनिक और प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी देख-रेख, जानकारी, शिक्षा और सेवाओं का अधिकार।
- शारीरिक निष्ठा का अधिकार और यह चुनने का अधिकार कि यदि चाहें तो कब, कैसे और किसके साथ पूर्ण सहमति के द्वारा यौनिक रूप से सक्रिय हों और यौनिक संबंधों को बनाएं।
- पूर्ण तथा स्वतंत्र सहमति और बिना किसी ज़ोर-जबरदस्ती के संबंध (जिसमें शादी शामिल है) बनाने का अधिकार।
- यौनिक और प्रजनन स्वास्थ्य सेवाओं में एकान्तता और गोपनीयता का अधिकार।
- बिना किसी भेदभाव के और प्रजनन से अलग अपनी यौनिकता को अभिव्यक्त करने का अधिकार।

साभारः सामान्य आधार यौनिकता
यौनिकता पर कार्य करने के सिद्धांत, तारशी 2003

लेख

युग दर युग नैतिकता
पुरानी रणनीतियां, नई धमकियां

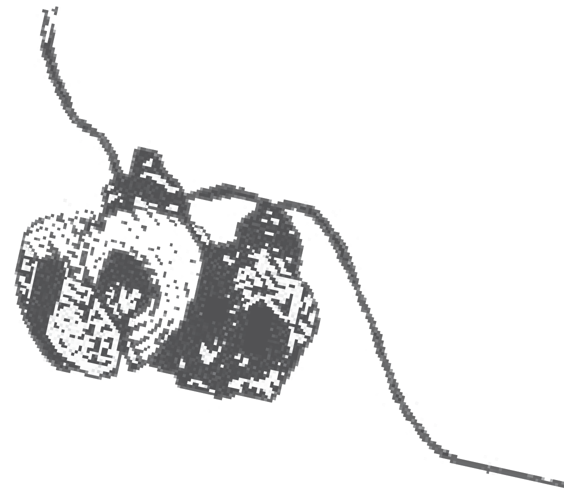

मंजिमा भट्टाचार्य

औरतों पर नैतिक नाकाबंदी सदियों से चली आ रही है। परिचित पुराने प्रयासों में शामिल हैं- आने जाने पर कड़ी निगरानी, वे कैसे बोलती हैं, क्या पहनती हैं, किससे बोलती हैं वगैरह।

पाबंदियों के कुछ नए रूप भी सामने आए हैं- कानूनी विधान के ज़रिए (मुंबई में डांस बार बंद करना) बलपूर्वक हिंसा (शिवसेना द्वारा 'वैलंटाइन डे' पर एकजुट लड़के लड़कियों को जबरन अलग करना), संस्थागत निर्णय का दबाव (विश्वविद्यालय में लड़कियों के पहनावे पर प्रतिबंध)। इसके अलावा एक अस्पष्ट और सदाचारी सामाजिक दबाव है जो सती और विधवा बहिष्कार जैसी कुप्रथाओं को न सिर्फ़ अनदेखा कर देता है बल्कि इन्हें वैध करार भी दे देता है- कभी परम्पराओं को पश्चिमीकरण से बचाने के नाम पर तो कभी संस्कृति, भारतीयता और सभ्यता को कायम रखने के नाम पर।

इन तमाम वंचनाओं की मिलीभगत औरतों के लिए अन्यायी परिस्थितियां पैदा करती हैं। एक न्यायाधीश जो बलात्कार की शिकार लड़की को अपने बलात्कारी से विवाह करने का फ़ैसला सुनाता है, दरअसल न्याय की आड़ में अपनी नैतिक मंशा को अंजाम दे रहा है। राज्य भी दोहरी नैतिकता की चालबाज़ियों से परे नहीं है। एक ओर किसी भी वस्तु को बेचने के लिए औरतों की देह का प्रदर्शन जायज़ ठहराया जाता है, तो वहीं दूसरी ओर साम्प्रदायिक दंगों में औरतों के यौन शोषण को 'सेंसर' कर देने की साजिश हम बखूबी जानते हैं।

नैतिकता, संस्कृति और परम्परा के रक्षक औरतों के हक़ों के सवाल पर निरंतर सन्नाटेदार ख़ामोशी साधे रहते हैं। जब दहेज की वेदी पर औरत ज़िंदा जलाई जाती है तब ये संस्कृति के पहरेदार कहां छिपे रहते हैं? क्यों इन्हें सांप सूंघ जाता है जब लड़कियों की घटती संख्या के आंकड़े अखबार की सुर्खियों में नज़र आते हैं? दिन-ब-दिन घरेलू हिंसा की बढ़ती वारदातों पर इनका ध्यान क्यों नहीं जाता?

नारीवाद और महिला अधिकार को अक्सर समाज विरोधी और नैतिकता का शत्रु माना जाता रहा है। इसका पुरज़ोर विरोध भी किया जाता है।

इस संशय और बौखलाहट की जड़ों को ढूंढने तथा एक सामाजिक- राजनैतिक हथियार के रूप में नैतिकता के इस्तेमाल के सफ़र को करीब से जानना-समझना ज़रूरी हो गया है। आज नैतिकता के प्रश्न एक नए आयाम के साथ हमारे सामने दोबारा खड़े हुए हैं, जिनके चलते विश्व स्तर पर जन आंदोलनों के सभी फायदे लुप्त होते जा रहे हैं तथा डर और आशंका का माहौल पनपता मालूम देता है।

नैतिकता - एक ऐतिहासिक झलक

नैतिकता की बहस औरतों, खासतौर पर उनकी यौनिकता पर केंद्रित होती है। अक्सर यह अल्पसंख्यकों या 'दूसरी' कौम पर आधिपत्य के हथियार स्वरूप भी इस्तेमाल की जाती है। पूर्वाग्रहों से ग्रस्त ये धारणाएं, किसी एक समूह या व्यक्ति की कमतरी साबित करने के तर्क के रूप में पेश की जाती हैं।

इतिहास गवाह है कि नैतिक उद्घोष समुदायों व औरतों की सीमा रेखाओं को तय और बरकरार रखने में मदद करती हैं। यह धर्म, परिवार, राष्ट्र, नस्ल, जाति, समुदाय आदि पितृसत्तात्मक संरचनाओं को चुनौती देने वाली कोई भी हरकत को 'उग्र नैतिक उल्लंघन' के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

नैतिकता एक अचल तथ्य नहीं है। क्या यह हैरानी की बात नहीं है कि एक दौर में वृहद अनैतिक समझा जाने

वाला औरतों का बर्ताव चाहे वह नृत्य, मंच पर अभिनय हो, पतलून पहनना या साइकिल की सवरी करना हो, को आज सहज समझा जाता है। या फिर एक प्रांत या देश में अनैतिक माने जाने वाले आचरण किसी दूसरे देश या समुदाय के लिए पूर्णतः नैतिक हो सकते हैं। यह फ़र्क़ नैतिकता की धुंधली और ढुलमुल सीमाओं का सूचक है। क्या यह ठोस सबूत नहीं है कि नैतिकता के दायरे समाज द्वारा रचे-गढ़े होते हैं।

नैतिक चिंताओं के पीछे औरत पर नियंत्रण तथा उसकी यौनिकता पर काबू करने की हसरत दबी है। नैतिकता पितृसत्ता का मूल हथियार है जिसका 'व्यक्तिगत' दायरों में इस्तेमाल करके यह साबित किया जाता है कि औरत का व्यवहार क्या होना चाहिए। नैतिकता की यह आधारशिला कई तरीकों से औरतों की ज़िंदगी पर अपना असर डालती है। यह औरत को समाज द्वारा तय लक्ष्मण रेखा के ऊपर चलने को मजबूर करती हैं। इस दायरे से बाहर निकलने पर औरत को कटघरे में खड़ा कर दिया जाता है, जहां अपने व्यवहार की जबावदेही उसे 'अच्छी' और 'बुरी' औरत की सख़्त बंदिशों में कैद कर देती है। समाज इन फ़र्कों के आधार पर औरत को सम्मान और सज़ा सुनाता है। दायरों की पाबंदियों को तोड़ने पर औरत को अपराधी मानकर सज़ा-ए-मौत जैसे 'नैतिक' दंड देने में भी समाज को कोई हिचकिचाहट नहीं होती।

समय चलते नैतिक उद्घोषों व डर की राजनीति को पितृसत्तात्मक ढांचों में चुनाव दिया गया है। नैतिकता सत्ता की शतरंज का एक अहम मोहरा है। धर्म, राज्य, राजनैतिक समूह, छात्र राजनीति, जाति पंचायत, समुदाय सब नैतिकता का इस्तेमाल अपनी सत्ता मज़बूत करने के लिए, दूसरों को सत्ताहीन कर कगार पर धकेलने के लिए करते हैं।

नैतिकता - जीवन के हर पहलू में शामिल

नैतिकता हमारे जीवन के हर पहलू को छूती है। घर की चारदीवारी, काम के दायरे, बाहर की दुनिया कुछ भी इससे बाहर नहीं है। राज्य, पुलिस, न्यायालय, धर्म, राजनीति, प्रभावी धार्मिक समूहों के बयानों, कानूनों, आदेशों के ज़रिए इसका असर आंकते हैं। यह तय करती है कि हम टीवी, सिनेमाघर, थियेटर, कला व संस्कृति, अखबार व साहित्य में क्या देखें, क्या पढ़ें।

नैतिकता अक्सर घर से बाहर, सार्वजनिक दायरों में मौजूद औरतों पर सवाल उठाती है। काम के लिए घर की चौखट लांघने वाली हर औरत के चरित्र पर संदेह किया जाता है। कुछ पेशे जैसे शिक्षक, साध्वी, नन, पुजारी ज़्यादा 'नैतिक' माने जाते हैं। यौन कर्मी, सेक्रेटरी, अभिनेत्रियां, बार डांसर, नर्स आदि पेशों से जुड़ी औरतों को शक के साथ देखा जाता है। अगर काम के लिए औरत बाहर सफ़र पर जाती है, देर रात घर से बाहर रहती हो, कुछ ख़ास क़िस्म के कपड़े, मेकअप आदि का इस्तेमाल करे तो इसे अनैतिक समझा जाना आम रवैया है।

ठीक इसी तरह कुछ ख़ास समुदाय, जाति व नस्लों के ख़िलाफ़ भेदभाव, हिंसा व पक्षपात नैतिकता के दायरों को ध्यान में रखकर किया जाता है जैसे उत्तर-पूर्वी क्षेत्र, 'दूसरी' कौम की औरतें आदि।

समुदायों की इज़्ज़त का भी भार औरतें ढोती हैं। औरतों का यौन व्यवहार इस इज़्ज़त का मुख्य अस्त्र है। डायन प्रथा, कारोकारी, जबर्दस्ती विवाह, जाति पंचायतों के फतवे आदि के ज़रिए औरतों पर इज़्ज़त की बंदिशें थोपी जाती हैं। इन सीमाओं का विरोध औरतों पर भयानक हिंसा और शोषण का 'वैध' कारण माना जाता है।

राजनैतिक दायरों में 'अच्छी' व 'बुरी' औरत की छवि बिल्कुल साफ़ है। इस क्षेत्र में औरतों को एक ख़ास प्रकार का व्यवहार, आचरण, पहनावा अपनाना पड़ता है। साध्वी, शादीशुदा (साड़ी, सिंदूरधारी) या फिर एक पवित्र विधवा स्त्री का रूप इस नैतिक नियंत्रण का संस्थागत स्वरूप है। इस रूप से अलग कोई भी रूप को जायज़ व नैतिक नहीं माना जाता।

नैतिकता की परिभाषा में स्त्री व पुरुषों की यौनिकता के तय मायने होते हैं। 'प्राकृतिक यौन बर्ताव' सही व नैतिक माना जाता है। इसमें मर्दों का उग्र व स्त्रियों का कोमल यौन व्यवहार जायज़ माना जाता है। स्त्रीत्व व पुरुषत्व की इन धारणओं की झलक भाषा, कानून, मीडिया सभी क्षेत्रों में दिखाई देती है। जो यौन बर्ताव 'प्राकृतिक' माने जाते हैं वह विवाह के दायरे के भीतर, एक साथी विषमलैंगिक व केवल प्रजनन के लिए हैं। समलैंगिकता, विवाहपूर्व यौन संबंध, शादी के बाहर यौन संबंध, बहु-साथी यौन वगैरह के लिए कोई जगह नहीं है। इसे अप्राकृतिक या अनैतिक भी माना

जाता है। इसी प्रकार मातृत्व को नैतिक दर्जा व गर्भपात या बांझपन को अनैतिकता के पैमाने पर तोला जाता है।

रवैयों के साथ-साथ क़ानून और न्याय संरचनाओं में भी नैतिक-अनैतिक पूर्वाग्रह विद्यमान हैं। बलात्कार क़ानून, समलैंगिकता विरोधी अधिनियम, पसनर्ल लॉ आदि इसके उदाहरण हैं। क़ानून यह भी मानता है कि परिवार क़ानूनी दायरों से बाहर, व्यक्तिगत क्षेत्र हैं लिहाज़ा परिवार के अंदर यौन हिंसा, वैवाहिक बलात्कार आदि मुद्दों पर क़ानूनी नियम बनाने की ज़रूरत महसूस नहीं की जाती। पुलिस तथा क़ानून लागू करने वाली दूसरी संस्थाओं के बर्ताव में भी नैतिक दायरे बेहद संकुचित होते हैं।

नैतिक नियंत्रण के पुनर्उत्थान का दौर - क्यों?

आज हमारे आसपास अनेक बदलाव होते नज़र आ रहे हैं। हर वर्ग की औरतें सार्वजनिक स्थानों पर खुलेआम पाई जा रही हैं। आत्मविश्वास से भरी, बेबाक, ये औरतें समाज की प्रचलित धारणाओं को चुनौती देती हैं। ये अपने नियत दायरों से बाहर निकलकर समाज में एक सक्रिय भूमिका अदा कर रही हैं। वे अपनी पंसद के कपड़े पहनती हैं और ऐसा व्यवहार करने से ज़रा भी नहीं हिचकिचाती जिसे किसी ज़माने में 'बुरी औरत के बर्ताव' के रूप में नकारा जाता था। यानी 'अच्छी' व 'बुरी' औरत के फ़र्क़ धुंधलाते नज़र आते हैं।

इन तमाम परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए नैतिक घेराबंदी की नई तदबीरें सामने आई हैं, जो इस डर से उपजी हैं कि आज औरत सामाजिक नियंत्रणों की बाड़ तोड़कर बाहर निकल रही हैं। समाज के नैतिक ढांचों को संजोए रखने के लिए उसे दोबारा नियंत्रण में रखना बेहद ज़रूरी हैं यह सोच हमें यह मानने को मजबूर करती है कि जब-जब औरत शोषण, दबाव और अन्याय का प्रतिवाद करके अपने अधिकारों की मांग करती हैं, तब-तब उसे दायरों में कैद करने के लिए 'अनैतिक' करार दिया जाता है। एक तरफ औरतों के अधिकारों की भाषा और चेतना दोनों को अपनाया जा रहा है। वहीं दूसरी ओर महिला अधिकारों के मौके और दायरे धीरे-धीरे सिकुड़ते जा रहे हैं।

यह पुनर्उत्थान समाज में 'पश्चिमीकरण' के दौर में (जिसे मुक्त व्यापार, भूमण्डलीकरण व सैटेलाइट मीडिया, संचार व तकनीकी प्रगति से बढ़ावा मिलता है) 'भारतीय संस्कृति' को बचाये रखने की कोशिशों का एक पहलू है। इस भावनात्मक मुद्दे का इस्तेमाल विभिन्न समूह आम जनता, राजनैतिक दलों, धार्मिक समूहों को अपने फ़ायदों के लिए एकजूट करने के लिए करते हैं। हमेशा की तरह औरतों पर संस्कृतिक और परंपराओं को क़ायम रखने की ज़िम्मेदारी सौंपी जा रही है। इन आशंका से जूझने के लिए उनके आचरण और व्यवहार पर सख़्त अंकुश लगाकर, सीमाओं को पुनर्भाषित कर, मर्यादा तोड़ने पर सज़ा का फतवा जारी करने के मंसूबे गढ़े जा रहे हैं।

इस नैतिक पुनर्उत्थान का क्या असर है? धर्म निरपेक्ष माहौल का अभाव, बातचीत के अवसर की कमी, प्रजातंत्र, आज़ादी और अधिकारों को ख़तरा व उनका हनन, कट्टरवादी व फांसीवादी ताक़तों का धीमा पर सुनियोजित कब्ज़ा जो प्रगतिशील आंदोलनों के फ़ायदों को नकार देता है।

इस माहौल का दोहरापन सबसे ज़्यादा दिल दहलाने वाला होता है। कॉलेज में जींस/पैंट पहनने पर या खेल के मैदान में खेल की पोशाक पहनने पर गला फाड़कर चीखने वाले पुरुष दहेज हत्या और स्त्री भ्रूण हत्या के मामलों में मूक बेरुखी का रवैया अपनाते हैं। डांस बार में औरतों के नाचने को अश्लील कहने वाले मंत्री/नेता खुद पुलिस/सरकारी अफ़सरों के मनोरंजन के लिए, सामाजिक कार्यक्रमों में एक 'आइटम गर्ल' के नृत्य का लुत्फ़ उठाते नज़र आते हैं। वे औरतों जो एक अभिनेत्री के इस बयान पर कि शादी से पहले सुरक्षित यौन संबंध अपराध नहीं हैं पर ज़मीन-आसमान एक कर देतीं हैं, वहीं अपने आसपास यौन हिंसा के मुद्दे पर या प्रेमी द्वारा प्रेमिका के मुंह पर तेज़ाब फेंके जाने की वारदातों को आसानी से नज़रअंदाज़ कर देती हैं। यह नैतिकता के दोगले, धुंधले स्वभाव का सबसे पारदर्शी सबूत है।

हमारी नज़र में एक 'नैतिक' समाज का नारीवादी रूप क्या हो? वह जिसमें पुरुष यौन आतंक का इस्तेमाल औरतों को काबू में रखने के लिए न करते हो, जहां औरतों का महज होना या उनका वजूद शक़ के दायरों से परे हो। जहां नैतिक दबाव शोषण और पहरेदारी का हथियार नहीं हो बल्कि नैतिक के मायने न्याय, समानता और प्रजातंत्र से जुड़े हुए हों।

साभारः जागोरी नोटबुक 2006 में पूर्व प्रकाशित।

आमने-सामने

चयन बनाम नैतिकता

मीनू पांडे

हर समाज में यौनिकता के बारे में एक नैतिक दृष्टिकोण बनाया जाता है जो यौनिकता के कायदे निर्धारित करता है। लेकिन सोचने की ज़रूरत है कि यह नैतिकता कौन निर्धारित करता है और इसका पूरे समाज पर क्या असर होता है? क्या कुछ लोगों द्वारा निर्धारित किए गए यौनिक कायदे क्या पूरे समाज पर लागू करना ठीक है? नैतिकता को बरकरार रखने में क्या कुछ लोगों के अधिकारों से मुंह फेर लेना ठीक है? इस पूरे विवाद में व्यक्तिगत चयन की जगह कहां है?

दो दशकों में यौनिकता के अधिकारों और अनेक यौनिक चयन को आदरपूर्वक स्थान दिलाने की आवाजें, यौनिकता अधिकार पर कार्यरत समूह उठा रहे हैं। साथ ही यौनिकता के मुद्दे पर सामाजिक और राजनैतिक नैतिकता बहुत कठोर और रूढ़िवादी हुई है। राजनैतिक और धार्मिक गुटों को लगता है कि नैतिकता पर उनकी समझ समस्त देशवासियों पर लागू होनी चाहिए। जब उन्हें लगता है कि उनकी नैतिकता खतरे में है, वे धावा बोल देते हैं। भारतीय संस्कृति की अपनी समझ को बरकरार रखने के लिए यह गुट हिंसा से नहीं कतराते। निम्न उदाहरण कुछ ऐसी घटनाओं पर ध्यान ले जाते हैं जो यौनिकता पर नैतिकता के बढ़ते असर को उजागर करते हैं।

उदाहरण 1: फरवरी 2009 में मैंगलोर के एक क्लब में श्रीरामसेने के आदमियों ने घुसकर, क्लब में मौजूद औरतों को पीटा। श्रीरामसेने, का मानना है कि क्लब में मौजूद औरतें पश्चिमी कपड़े पहन कर और मर्दो के साथ शराब पीकर, भारतीय संस्कृति को भ्रष्ट कर रही थीं।

उदाहरण 2: जून 2009 में हरियाणा के एक गांव से बबली और मनोज का कत्ल किया गया। जिस 'पाप' के लिए उन्हें मौत की सज़ा दी गई थी, वह यह था कि बबली के परिवार की इच्छा के बिना इन दोनों ने शादी कर ली थी। बबली के परिवार वाले इन दोनों के एक गोत्र का होने की वजह से, रिश्ते की मंजूरी नहीं दे रहे थे। पंचायत ने इनकी शादी को अवैध घोषित किया। यह हत्या परिवार और गांव की 'इ़ज़्ज़त' बचाने के लिए की गई थी।

उदाहरण 3: जून 2009 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने भारतीय दण्ड विधान की धारा 377 को असंवैधानिक करार देते हुए समलैंगिकता को गैर-आपराधिक ठहराया। यह ऐतिहासिक फैसला सम्मान, गोपनीयता, समानता और भेदभाव से मुक्ति की नींव पर खड़ा है। इस फैसले के आते ही कई रूढ़िवादी दलों ने सर्वोच्च न्यायालय में याचिकाएं दायर की हैं कि इस फैसले पर रोक लगाई जाए। इनका तर्क है कि समलैंगिकता शादी जैसे सामाजिक बंधन को तोड़ देगी, यह भारतीय संस्कृति के ख़िलाफ़ है कि यह एक पश्चिमी प्रभाव है।

उदाहरण 4: कोलकाता के पास के एक छोटे कस्बे में दो औरतों ने एक-साथ खुदकुशी कर ली। दोनों औरतें एक दूसरे के साथ रिश्ते में थीं। इनमें से एक औरत की उसके परिवार ने ज़बरदस्ती शादी भी करवा दी थी। एक दूसरे से अलग हो जाने के डर और सामाजिक दबाव के कारण हताश होकर इन्होंने आत्महत्या कर ली। इनके मृतक शरीर अस्पताल में ही पड़े रहे। इनके परिवारों ने इनका दाह-संस्कार ना करना बेहतर समझा।

ये हमारे देश में मौजूद माहौल को दर्शाते हैं। ऐसा लगता है कि यौनिक चयन में इतनी ताकत है कि यह परिवारों और समाज की नैतिकता को बड़ा धक्का पहुंचा सकते हैं। इस चयन की सीमा हमारे आज के आधुनिक समाज में भी सीमित ही है।

यौनिक अधिकारों को पहचान देने के लिए काम तो चल रहा है। इन आवाज़ों को और मज़बूत बनाना बहुत ज़रूरी है। यह आवाज़ें तब और मज़बूत हो पाएंगी जब बाकी अधिकारों पर कार्य करने वालों और नागरिक समाज की आवाज़ें इनके साथ जुड़ेंगी।

युवा यौनिकता-कुछ सवाल

रीना ओ-लियरी

मेरा नाम रीना ओ-लियरी है और मैं एक अमरीकी छात्रा हूं, सितम्बर 2000 से *जागोरी* के साथ जुड़ी हूं। इस दौरान बिताए समय में मैंने अमरीकी और भारतीय संस्कृतियों के फ़र्कों को नज़दीकी से अनुभव किया है। मुझे विशेषतः लड़कियों व औरतों से समाज की लैंगिक अपेक्षाओं व यौनिकता से जुड़े आयामों ने काफी प्रभावित किया है।

एक विदेशी होने के नाते मैं भारत में व्याप्त यौनिक व लैंगिक नियमों को उनकी तमाम जटिलताओं के साथ समझने का दावा तो नहीं कर सकती। पर मैं अमरीका में एक लड़की को मिलने वाले यौनिकता से जुड़े तीक्ष्ण व परस्पर विरोधी संदेशों के बारे में ज़रूर सोचती हूं। मेरे अनुभव मेरी नस्ल, वर्ग व भौगोलिक ठिकाने द्वारा परिभाषित होते हैं। अमरीका में विविध पृष्ठभूमि से आने वाली औरतों के लिए सामाजिक व्यवहारों को लेकर अलग-अलग संदेश व अपेक्षाएं होती हैं। एक विदेशी दर्शक के लिए इस जटिल ताने-बाने को समझ पाना मुश्किल होगा।

भारत में मैं इसी विदेशी दर्शक की तरह हूं और मुझे इसी तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

अमरीका में युवा लड़कियों के यौनिकरण का विषय नारीवादियों के लिए एक गंभीर मुद्दा है। वहां युवा लड़कियों पर खुद को यौनिक रूप से वांछनीय और रज़ामंद दिखाने का सांस्कृतिक दबाव होता है। बच्चियों के लिए बिकने वाली खिलौनानुमा गुड़ियाएं परदर्शी कपड़े पहनती हैं। दस वर्ष की बच्चियों को कामोत्तेजक अंदरूनी वस्त्र बेचे जाते हैं। युवा लड़कियों को बेचे जाने वाले लोकप्रिय संगीत में गायिकाएं खुद को उत्तेजक व कामुक अंदाज़ में पेश करती हैं।

भारत में मेरे अनुसार मुद्दा अलग है। यहां युवा लड़कियां विशेषकर जो मध्य व उच्च वर्ग परिवारों से आती हैं पर अपनी यौनिकता को नकारने का पारिवारिक व सामाजिक दबाव रहता है। युवा लड़कियों को यौनिक दबावों से बचाकर रखना शायद अच्छा होता हो परन्तु युवावस्था तक पहुंचने पर अपनी यौनिक पहचान को तलाश करना व्यक्तिगत विकास के लिए महत्वपूर्ण होता है।

लड़कियों की उभरती यौनिकता चुनौतीपूर्ण होती हैं— माता-पिता शिक्षकों व खुद लड़कियों के लिए भी। अमरीका में लड़कपन से औरतपन का बदलाव प्रायः उभयभाविता से दिया जाता है व इसमें ज़्यादातर समस्याएं व चुनौतियां दिखाई पड़ती हैं। युवा लड़कियों को अचानक लड़कों व पुरुषों के यौनिक सत्कार का सामना करना पड़ता है जो डरावना व कष्टप्रद हो सकता है। लड़कपन से स्त्रीत्व तक का सफ़र बहुत रोमांचक और आनंद भी होता है। परन्तु अमरीका में इस परिवर्तन को एक लड़की के जीवन में होने वाले महत्वपूर्ण लम्हों के रूप में हम नहीं मनाते।

एक अन्य कारण जो इस विषय को और अधिक जटिल बनाता है वह अमरीका का चिकित्सीय प्रवाह— वहां लड़कियों को कम उम्र में परिपक्वता का आगमन होता है। डाक्टरों के अनुसार बड़ी संख्या में अमरीकी बच्चियां आठ-नौ साल की उम्र में परिपक्व होने लगी हैं। इस प्रवाह के कारण तो जटिल हैं परन्तु इसका प्रभाव बेहद महत्वपूर्ण हैं।

जब एक बच्ची का शरीर छोटी सी उम्र मे परिपक्वता हासिल कर लेता है तो उसके लिए इस प्राकृतिक बदलाव के क्या मायने होते हैं? हम अपनी बच्चियों को जल्दी परिपक्व होने के दबाव से बचाने के साथ-साथ लड़कपन से स्त्रीत्व तक पहुंचने के सफर को आनन्द के साथ मनाने के लिए कैसे प्रोत्साहित कर सकते हैं। हम उन्हें अपनी चाहतों और आकांक्षाओं को नरमी और सुख के साथ महसूस करने में कैसे मदद करें? मेरे ख्याल में इन बौखला देने वाले सवालों का जबाव ढूंढने की परेशानी ही एक संस्कृति में स्त्री यौनिकता को लेकर व्याप्त उभयभाविता और किंकर्तव्यविमूढ़ता को रेखांकित करती है।

बू

सआदत हसन मंटो

बरसात के यही दिन थे। खिड़की के बाहर पीपल के पत्ते इसी तरह नहा रहे थे। सागवान के उस स्प्रिंगवाले पलंग पर, जो अब खिड़की के पास से ज़रा उधर को सरका दिया गया था, एक घाटन लौंडिया रनधीर के साथ चिपकी हुई थी।

खिड़की के बाहर पीपल के पत्ते रात के दूधियाले अंधेरे में झुमकों की तरह थरथरा रहे थे और नहा रहे थे और वह घाटन लौंडिया रनधीर के साथ कंपकंपाहट बनकर चिपकी हुई थी।

शाम के करीब, दिन भर एक अंग्रेज़ी अख़बार की तमाम ख़बरें और इश्तिहार पढ़ने के बाद जब वह बालकनी में ज़रा तफ़रीह की ख़ातिर आ खड़ा हुआ था तो उसने इस घाटन लड़की को, जो साथ वाले रस्सियों के कारख़ाने में काम करती थी और बारिश से बचने के लिए इमली के दरख़्त के नीचे खड़ी थी, खांस-खांकारकर अपनी तरफ देखने को मजबूर किया था और आख़िर में हाथ के इशारे से उसे ऊपर बुला लिया था।

वह कई दिनों से एक उदास किस्म की तन्हाई महसूस कर रहा था। जंग के कारण बंबई की क़रीब-क़रीब तमाम क्रिश्चियन छोकरियां, जो पहले सस्ते दामों पर मिल जाती थीं, औरतों की एग्ज़ालरी फ़ोर्स में भर्ती हो गई थीं। उनमें से कुछ ने फोर्ट के इलाके में डांसिंग स्कूल खोल लिए थे जहां सिर्फ़ फ़ौजी गोरों को जाने की इजाज़त थी... रनधीर बहुत उदास हो गया था। उसकी उदासी की एक वजह तो यह थी कि क्रिश्चियन छोकरियां नायाब हो गई थीं, दूसरी वजह यह भी थी कि रनधीर जो फ़ौजी गोरों के मुकाबले में हीं ज़्यादा शिक्षित, सेहतमंद और खूबसूरत था, सिर्फ़ इसलिए उस पर फ़ोर्ट के दरवाज़े बंद कर दिए गए थे कि उसकी चमड़ी सफ़ेद नहीं थी।

जंग से पहले रनधीरा नागपाड़ा और ताज होटल की कई क्रिश्चियन लड़कियों से जिस्मानी मुलाक़ात कर चुका था। उसे अच्छी तरह मालूम था कि ऐसी मुलाक़ातों के कारण से वह उन क्रिश्चियन लौंड़ों के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादा पहचान रखता है जिनसे यह लड़कियां फ़ैशन के तौर पर रोमांस लड़ाती हैं और बाद में किसी दूसरे से शादी कर लेती है।

रनधीर ने महज़ दिल में हैज़ल से उसकी ताज़ा-ताज़ा पैदा घमंड का बदला लेने की ख़ातिर उस घाटन लड़की को इशारे से ऊपर बुलाया था। हैज़ल उसके फ़्लैट के नीचे रहती थी और हर रोज़ सुबह को वर्दी पहनकर और अपने कटे हुए बालों पर ख़ाकी रंग की टोपी तिरछी जमाकर बाहर निकलती थी और इस अंदाज़ से चलती थी फुटपाथ पर तमाम जाने वाले उसके क़दमों के आगे टाट की तरह बिछते चले जाएंगे।

रनधीर ने सोचा था कि आख़िर वह क्यों उन क्रिश्चियन छोकरियों की तरफ इतना आसक्त है। इसमें कोई शक नहीं कि वह अपने जिस्म की तमाम क़ाबिले-नुमाइश चीज़ों की अच्छी तरह नुमाइश करती हैं। किसी किस्म की झिझक महसूस किए बग़ैर अपने अय्याम की बेतरतीबी का ज़िक्र कर देती हैं। अपने पुराने आशिकों का हाल सुनाती हैं। जब डांस की धुन सुनती हैं तो अपनी टांगें थिरकाना शुरू कर देती हैं— यह सब ठीक है लेकिन कोई भी औरत इन तमाम ख़ूबियों की मालिक हो सकती है।

रनधीर ने जब घाटन लड़की को इशारे से ऊपरे बुलाया था तो उसे हरगिज़-हरगिज़ यक़ीन नहीं था कि वह उसको अपने साथ सुला सकेगा, लेकिन थोड़ी ही देर के बाद जब उसने उसके भीगे हुए कपड़े देखकर यह ख़याल किया था, कहीं ऐसा न हो, बेचारी को निमोनिया हो जाए तो रनधीर ने उससे कहा थाः “यह कपड़े उतार दो, सर्दी लग जाएगी...।”

वह उसका मतलब समझ गई थी, क्योंकि उसकी आंखों में शर्म के लाल डोरे तैर गए थे मगर बाद में जब रनधीर ने उसे अपनी सफ़ेद धोती निकालकर दी तो उसने कुछ देर सोचकर अपना कुर्त्ता खोला जिसका मैल भीगने के कारण और ज़्यादा उभर आया था— कुर्त्ता खोलकर उसने एक तरफ रख दिया और जल्दी से सफ़ेद धोती अपनी रानों पर डाल ली। फिर उसने अपनी फंसी-फंसी चोली उतारने की कोशिश शुरू की जिसके दोनों किनारों को मिलाकर उसने एक गांठ दे रखी थी। यह गांठ उसके तंदुरुस्त सीने के नन्हें मगर मैले गढ़े में धंस गई थी।

देर तक वह अपने घिसे हुए नाख़ूनों की मदद से चोली की गिरह खोलने की कोशिश करती रही जो बारिश के पानी से बहुत ज़्यादा मज़बूत हो गई थी। जब थककर हार गई तो उसने धीमी ज़बान में रनधीर से कुछ कहा जिसका मतलब यह थाः 'मैं क्या करूं, नहीं खुलती...'

रनधीर उसके पास बैठ गया और गिरह खोलने लगा। थक-हारकर उसने एक हाथ में चोली का एक सिरा पकड़ा, दूसरे हाथ में दूसरा, और ज़ोर से खींचा। गिरह एकदम फिसली, रनधीर के हाथ ज़ोर में इधर-उधर हटे और दो धड़कती हुई छातियां उजागर हुईं। रनधीर ने एक लहज़े के लिए ख़याल किया कि उसके अपने हाथों ने उस घाटन लड़की के सीने पर नर्म-नर्म गुंधी हुई मिट्टी को चाबुकदस्त कुम्हार की तरह दो प्यालों की शक्ल दे दी है।

उसकी सेहतमंद छातियों में वही गदराहट, वही तरावट, वही गर्म-गर्म ठंडक थी, जो कुम्हार के हाथों से निकले हुए ताज़ा-ताज़ा कच्चे बर्तनों में होती है।

मटमैले रंग की उस जवान छातियों में, जो बिल्कुल बेदाग थीं, एक अजीब़ क़िस्म की चमक थी। सियाही माइल गंदुमी रंग के नीचे धुंधली रोशनी की एक तह-सी थी जिसने यह अजीबो-ग़रीब चमक पैदा कर दी थी जो चमक होने के बावजूद चमक नहीं थी। उसके सीने पर छातियों के यह उभार दीए मालूम होते थे, जो तालाब के गदले पाने के अंदर जल रहे हों।

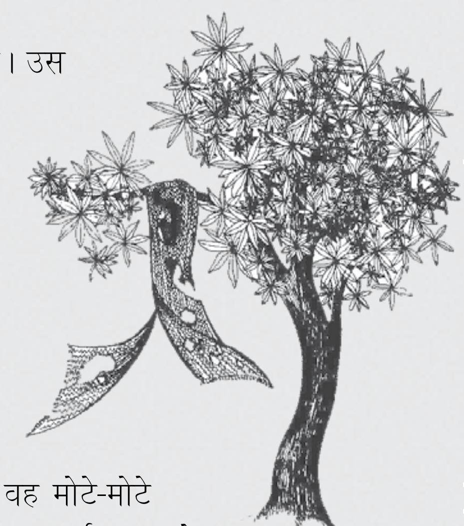

बरसात के यही दिन थे। खिड़की के बाहर पीपल के पत्ते कंपकंपा रहे थे। उस घाटन लड़की के दोनों कपड़े, जो पानी से सराबोर हो चुके थे, एक ढेरी की शक्ल में फ़र्श पर पड़े थे और वह रनधीर के साथ चिपटी हुई थी। उसके नंगे और मैले बदन की गर्मी रनधीर के जिस्म में वह कैफ़ियत पैदा कर रही थी जो सख़्त सर्दियों में नाइयों के गंदे मगर गर्म हम्माम में नहाते वक़्त महसूस हुआ करती है।

सारी रात वह रनधीर के साथ चिपटी रही। दोनों एक-दूसरे में लीन हो गए थे। उन्होंने बमुश्किल एक-दो बातें की होंगी, क्योंकि जो कुछ उन्हें कहना-सुनना था, सांसों, होंठों और हाथों से तय होता रहा था। रनधीर के हाथ सारी रात उसकी छातियों पर फिरते रहे। छोटी-छोटी चूचियां और वह मोटे-मोटे रोमछिद्र जो उनके इर्द-गिर्द एक काले दायरे की शक्ल में फैले हुए थे, उस हवाई लम्स से जाग उठते और उस घाटन लड़की के सारे जिस्म में ऐसी कंपन पैदा हो जाती कि रनधीर खुद भी एक लम्हें के लिए कंपकंपा उठता।

ऐसी कंपकंपाहटों से रनधीर का सैकड़ों मर्तबा परिचय हो चुका था। वह उसकी लज़्ज़त से अच्छी तरह आश्ना था। कई लड़कियों के नर्म और सख़्त सीनों के साथ अपना सीना मिलाकर वह ऐसी रातें गुज़ार चुका था। वह ऐसी लड़कियों के साथ भी रह चुका था जो बिलकुल अल्हड़ थीं और उसके साथ लिपटकर घर की वह तमाम बातें सुना दिया करती थीं जो किसी ग़ैर को नहीं सुनाना चाहिए। वह ऐसी लड़कियों से भी जिस्मानी रिश्ता क़ायम कर चुका था जो सारी मशक़्क़त ख़ुद करती थीं और उसे कोई तकलीफ़ नहीं देती थीं, मगर यह घाटन लड़की जो इमली के दरख़्त के नीचे भीगी हुई खड़ी थी और जिसको उसने इशारे से ऊपर बुला लिया था, बहुत ही मुख़्तलिफ़ थी।

सारी रात रनधीर को उसके बदन से अजीबो-गरीब क़िस्म की बू आती रही थी। उस बू को जो खुशबू और बदबू दोनों थी, वह तमाम रात पीता रहा था। उसकी बग़लों से, उसकी छातियों से, उसके बालों से, उसके पेट से, हर जगह से यह बू जो बदबू भी थी और ख़ुशबू भी, रनधीर की हर सांस में मौजूद थी। तमाम रात वह सोचता रहा था कि यह घाटन लड़की बिलकुल क़रीब होने पर भी हरगिज़-हरगिज़ इतनी ज़्यादा क़रीब न होती, अगर उसके नंगे बदन से यह बू न उड़ती-यह बू जो उसके दिलो-दिमाग़ की हर सलवट में रेंग गई थी, उसके तमाम पुराने और नए ख़यालों में रच गई थी।

उस बू ने उस लड़की को और रनधीर को एक रात के लिए आपस में एकम-एक कर दिया था। दोनों एक-दूसरे के अंदर दाख़िल हो गए थे, गहराइयों में उतर गए थे जहां पहुंचकर वह एक ख़ालिस इंसानी लज़्ज़त में तब्दील हो गए थे, ऐसी लज़्ज़त जो लम्हाती होने के बावजूद कायम थी। वह दोनों एक ऐसा पंछी बन गए थे जो आसमान की नीलाहटों में उड़ता-उड़ता स्थिर दिखाई देता है।

उस बू को जो उस घाटन लड़की के रोम-रोम से बाहर निकली थी, रनधीर अच्छी तरह समझता था, हालांकि वह इसकी व्याख्या नहीं कर सकता था। जिस तरह मिट्टी पर पानी छिड़कने से सोंधी-सोंधी बास पैदा होती है, लेकिन नहीं, वह बू कुछ और ही क़िस्म की थी। इसमें लैवंडर और इत्र का बनावटीपन नहीं था। वह बिलकुल असली थी-औरत और मर्द के बाहमी ताल्लुक़ात की तरह असली और उज़ली।

रनधीर को पसीने की बू से सख़्त नफ़रत थी। वह नहाने के बाद आमतौर पर अपनी बग़लों में ख़ुशबूदार पाउडर लगाता था या कोई ऐसी दवा इस्तेमाल करता था जिससे पसीने की बू दब जाए लेकिन हैरत है कि उसने कई बार, हां, कई बार उस घाटन लड़की की बालों भरी बग़लों को चूमा और उसे बिलकुल घिन न आई,बल्कि उसे अजीब तरह की लज़्ज़त महसूस हूई। उसकी बग़लों के नर्म-नर्म बाल पसीने से गीले हो रहे थे। उनसे भी वही बू निकली थी जो अत्यधिक पहचानी होने के बावजूद अनजानी थी। रनधीर को ऐसा लगा था कि वह उस बू को जानता है, पहचानता है, उसका मतलब भी समझता है, लेकिन किसी और को यह मतलब समझा नहीं सकता।

बरसात के यही... दिन थे इसी खिड़की के बाहर जब उसने देखा था तो पीपल के पत्ते लरज़-लरज़कर नहा रहे थे, हवा में सरसराहटें और फड़फड़ाहटें घुली हुई थीं। अंधेरा था मगर उसमें दबी-दबी धुंधली सी रोशनी भी समाई हुई थी, जैसे बारिश के क़तरों के साथ लगकर तारों की थोड़ी-थोड़ी रोशनी उतर आई हो- बरसात के यही दिन थे जब रनधीर के इसी कमरे में सागवान का सिर्फ़ एक पलंग होता था, मगर अब उसके साथ ही एक दूसरा भी पड़ा था और कोने में नई ड्रैसिंग टेबल भी मौजूद थी। दिन यही बरसात के थे, मौसम भी बिलकुल ऐसा ही था, बारिश के क़तरों के साथ तारों की थोड़ी-थोड़ी रोशनी भी उतर रही थी, मगर फ़ज़ा में हिना के इत्र की तेज़ खुशबू बसी हुई थी।

दूसरा पलंग खाली था। उस पलंग पर, जिस पर रनधीर औंधे मुंह लेटा खिड़की के बाहर पीपल के लरज़ते हुए पत्तों पर बारिश के कतरों का नृत्य देख रहा था, एक गोरी-चिट्टी लड़की अपने नंगे जिस्म से छुपाने की नाकाम कोशिश करते-करते सो गई थी... उसकी लाल रेशमी सलवार दूसरे पलंग पर पड़ी थी। उसके गहरे सुर्ख़ कुर्ते का एक फुंदना नीचे लटक रहा था। उस पलंग पर उसके दूसरे उतरे हुए कपड़े भी पड़े थे। उसकी सुनहरे फूलों वाली अंगिया, जांघिया और दुपट्टा... सबका रंग सुर्ख था, बेहद सुर्ख। यह सब कपड़े हिना के इत्र की तेज़ खुशबू में बसे हुए थे।

लड़की के काले बालों में मुक़्क़ैश के कण गर्द की तरह जमे हुए थे। चेहरे पर सुर्ख़ी और मुक़्क़ैश के इन कतरों ने मिल-जुलकर एक अजीबो-ग़रीब रंग पैदा कर दिया था, बेजान सा उड़ा और उसके गोरे सीने पर अंगिया के कच्चे रंग ने लाल-लाल धब्बे डाल दिए थे।

छातियां दूध की तरह सफ़ेद थीं, जिसमें थोड़ी-थोड़ी नीलाहट भी होती है। बग़लों के बाल मुंडे हुए जिसके वहां सुर्मई ग़ुबार-सा पैदा हो गया था। रनधीर कई बार उस लड़की की तरफ़ देखकर सोच चुका थाः क्या ऐसा नहीं लगता जैसे मैंने अभी-अभी कीलें उखेड़कर उसे लकड़ी के बंद बक्स में से निकाला है, किताबों और चीनी के बर्तनों की तरह, क्योंकि जिस तरह किताबों पर दाब के निशान होते हैं और चीनी के बर्तनों पर हिलने-जुलने से ख़राशें आ जाती हैं, ठीक इसी तरह इस लड़की के बदन पर कई जगह ऐसे निशान थे।

जब रनधीर ने उसकी तंग और चुस्त अंगिया की डोरियां खोली थीं तो पीठ पर और सामने सीने के नर्म-नर्म गोश्त पर झुर्रियां सी बनी हुई थीं और कमर के इर्द-गिर्द कसकर बंधे हुए नाड़े का निशान... वज़नी और नोकीले जड़ाऊ नेकलेस से उसके सीने पर कई जगह ख़राशें पैदा हो गई थीं, जैसे नाख़ूनों से बड़े ज़ोर के साथ खुजाया गया हो। बरसात के वही दिन थे, पीपल की नर्म-नर्म कोमल पत्तियों पर बारिश के कतरे गिरने से वैसी ही आवाज़ पैदा हो रही थी, जैसी कि रनधीर उस रोज़ तमाम रात सुनता रहा था। मौसम बहुत खुशगवार था। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी, लेकिन उसमें हिना के इत्र की तेज़ ख़ुशबू घुली हुई थी।

रनधीर के हाथ बहुत देर तक उस गोरी-चिट्टी लड़की के कच्चे दूध जैसे सफ़ेद सीने पर हवाई लम्स की तरह फिरते रहे। उसकी उंगलियों ने उस गोरे-गोरे जिस्म में कई कंपन दौड़ते हुए महसूस किए। इस नर्म-नर्म जिस्म के कई हिस्सों में उसे सिमटी हुई कंपकंपाहटों का भी पता चला। जब उसने अपना सीना उसके सीने के साथ मिलाया तो रनधीर के जिस्म के हर रोम ने उस लड़की के छेड़े हुए तारों की आवाज़ सुनी... लेकिन वह पुकार कहां थी, वह पुकार जो उसने घाटन लड़की के जिस्म की बू में सूंघी थी, वह पुकार जो दूध के प्यासे बच्चे के रोने से कहीं ज़्यादा जानी-समझी थी, वह पुकार जो ध्वनि की सीमाओं से निकलकर बेआवाज़ हो गई थी।

रनधीर सलाखों वाली खिड़की से बाहर देख रहा था। उसके बहुत क़रीब पीपल के पत्ते लरज़ रहे थे, मगर वह उनकी लरज़िशों के उस पार, दूर बहुत दूर देखने की कोशिश कर रहा था, जहां उसे मटमैले बादलों में एक अजीब क़िस्म की धुंधली रोशनी घुली हुई दिखाई देती थी, जैसे उस घाटन लड़की के सीने में उसे नज़र आई थी, ऐसी रोशनी जो राज़ की बात की तरह छुपी हुई मगर ज़ाहिर थी।

रनधीर के पहलू में एक गोरी-चिट्टी लड़की, जिसका जिस्म दूध और घी मिले आटे की तरह मुलायम था, लेटी थी, उसके सोए हुए जिस्म से हिना के इत्र की खुशबू आ रही थी जो अब थकी-थकी मालूम होती थी। रनधीर को यह दम तोड़ती हुई खुशबू बहुत नागवार मालूम हुई। उसमें कुछ खटास-सी थी एक अजीब क़िस्म की खटास जो बदहज़मी की डकारों में होती है, उदास, बेरंग, बेकैफ़।

रनधीर ने अपने पहलू में लेटी हुई लड़की की तरफ देखा। जिस तरह फटे हुए दूध में सफ़ेद-सफ़ेद बेजान फुटकियां बेरंग पानी में ठहरी होती हैं, उसी तरह उस लड़की का स्त्रीत्व उसके वजूद में ठहरा हुआ था, सफ़ेद-सफ़ेद धब्बों की सूरत में। असल में रनधीर के दिलो-दिमाग मे वह बू बसी हुई थी जो उस घाटन लड़की के जिस्म से बग़ैर किसी कोशिश के बाहर निकली थी। वह बू जो हिना के इत्र से कहीं ज़्यादा हल्की-फुल्की थी, जिसमें सूंघे जाने का ख्वाब नहीं था, जो खुद व खुद नाक के रास्ते दाखिल होकर अपनी सही मंज़िल पर पहुंच गई थी।

रनधीर ने आख़िरी कोशिश करते हुए उस लड़की के दूधियाले जिस्म पर हाथ फेरा, मगर उसे कोई कंपकंपाहट महसूस न हुई। उसकी नई-नवेली बीवी, जो फ़र्स्ट क्लास मैजिस्ट्रेट की लड़की थी, जिसने बी.ए. तक तालीम पाई थी और जो अपने कालिज में सैकड़ों लड़कों के दिल की धड़कन थी, रनधीर की नब्ज़ तेज़ न कर सकी... वह हिना की मरती हुई खुशबू में उस बू की तलाश करता रहा जो बरसात के इन्हीं दिनों में, जब खिड़की के बाहर पीपल के पत्ते बारिश में नहा रहे थे, उसे घाटन लड़की के मैले जिस्म से आई थी।

अभियान

यौनिकता और हम

जया शर्मा

"जब भी मैं यौनिकता शब्द के बारे में सुनती ... कुछ अजीब सा महसूस होता... पहली कार्यशाला के दौरान मुझे शर्मिंदगी महसूस हुई, पर उत्सुकता भी। कुछ चीज़ों को मैंने अजीब सा पाया, लेकिन भीतर से अच्छा भी महसूस हुआ ... चूंकि विभिन्न क्रियाओं के बारे में, हम लोगों के शरीर के बारे में और हमारे जीवन के बारे में होने वाली बहसें इतनी खुलेपन के साथ हो रही थीं। ... मैंने महसूस किया कि ऐसी बातें और जानकारियों तक दूसरों की पहुंच नहीं है। हमारे संगठन में आमतौर पर लोग कहा करते थे कि इस किस्म की बातें 'गंदी बातें' हैं। हम लोगों ने सोचा था कि गांव में रहने वाली महिलाओं से इस तरह की बातें करने पर हमें खराब प्रतिक्रिया मिलेगी और वो हमारी पिटाई कर डालेंगी! लेकिन सच्चाई तो यह है कि वे किसी न किसी तरह से सेक्स के बारे में बातें करती हैं। शादी-ब्याह के मौकों पर या होली के त्योहार पर वे गंदे गाने गाती हैं। लेकिन वैसे इस तरह के विषय पर वे खुलकर बातें नहीं कर सकतीं।"

केसरीबाई 'यौनिकता और हम' कार्यक्रम में हिस्सा लेने वाले प्रतिभागियों में से एक थी। इस कार्यक्रम का उद्देश्य था यौनिकता के मुद्दों पर समुदाय स्तर पर काम कर रहे संगठनों की समझ गहरी करना। ये पांच संगठन थे — *महिला जन अधिकार समिति, राजस्थान; महिला समाख्या, बिहार; वनांगना, उत्तर प्रदेश; ग्रामोन्नति, उत्तर प्रदेश और एक्शन इंडिया, नई दिल्ली*। इस कार्यक्रम को *निरंतर, दिल्ली* ने आयोजित किया था। निरंतर एक गैर सरकारी महिला संगठन है जो अपने प्रारंभिक काल, 1993 से जेंडर और शिक्षा के मुद्दों और यौनिकता के मुद्दों पर 2007 से काम कर रहा है। इस कार्यक्रम की खासियत यह थी कि यौनिकता के मुद्दों पर ग्रामीण व गरीब समुदाय की महिलाओं और संस्थाओं के कार्यकर्ता - दोनों के बीच सघन रूप से काम किया गया। हर संस्था ने कम से कम पांच कार्यशालाओं में भाग लिया।

'यौनिकता और हम' नामक इस कार्यक्रम की पहलकदमी एक ऐसे संदर्भ से उपजी थी जिसके तहत गरीब समुदाय की महिलाओं के अधिकारों से जुड़े प्रयासों में यौन अधिकारों के बारे में बात करने की कोई प्रवृत्ति नहीं दिखती है। इसकी एक खास वजह यह है कि अक्सर अधिकारों को एक दर्जाबंदी के खांचे में रखा जाता है। इस दर्जाबंदी में गरीबी और महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा से जुड़े मुद्दे सबसे ऊपरी पायदान पर हैं। यौनिकता जैसे अधिकारों को दर्जाबंदी के सबसे निचले पायदान पर ढकेल दिया जाता है। ये प्रवृत्ति गरीबों के प्रति एक खास रवैये की झलक दिखलाती है जो मानता है कि गरीब लोगों की यौनिक ज़रूरतें हैं ही नहीं।

इस संदर्भ से उपजे 'यौनिकता और हम' कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य थे, यौनिकता पर एक सकारात्मक और राजनैतिक समझ विकसित करना, समुदाय स्तर पर काम में यौनिकता के महत्व को समझना और संस्थाओं में यौनिकता से जुड़े प्रशिक्षण आयोजित कर पाने की तैयारी करना।

कार्यशालाओं में जो विषय लिए गए उनमें निम्न शामिल थे —

यौनिकता क्या है? यौनिकता से जुड़े कायदे क्या हैं? इनका जेंडर, जाति, धर्म, वर्ग और सत्ता के बाकी आयामों से क्या जुड़ाव है? 'अच्छी औरत' की परिकल्पना में यौनिकता की क्या भूमिका है? जेंडर में विभिन्नता, अंतरजातीय, अंतरधार्मिक, समलैंगिक चाहतें एवं यौनिकता का अन्य अधिकारों से जुड़ाव।

इस लेख में मैं इस कार्यक्रम के तहत आयोजित कार्यशालाओं की एक झलक आपके साथ बांटना चाहूंगी।

यौनिकता से जुड़े मूल विचारों पर बातचीत करने के तरीकों में हमारे द्वारा अपनाया गया एक सबसे कारगर तरीका यह रहा था कि यौन और यौनिकता के विषय में बातें भोजन की मिसाल देकर की जाएं। ग्रामीण औरतें यौन संबंधी ज़रूरतों का वर्णन करते हुए अकसर जिस जुमले का इस्तेमाल करती थीं वह था — 'शरीर की भूख'। मसलन, एक प्रतिभागी ने कहा कि अगर कोई पांच रोटी खाना चाहे और उसे केवल दो मिलें, तो बाकी तीन रोटियां उसे कहीं से हासिल करनी होंगी, यहां तक कि ज़रूरत पड़ने पर पड़ोसी से लेनी होंगी। दूसरी ओर, अगर कोई औरत सात रोटियां खाने के लिये मजबूर की जाए तो उसे बदहज़मी हो जाएगी।

कार्यक्रम संचालकों के बतौर हम लोग भी प्रतिभागियों से खाने से जुड़े कई सवाल पूछते थे। आपको खाने में कौन सी चीज़ सबसे ज़्यादा पसंद है? खाने में आप किस चीज़ को सबसे ज़्यादा नापसंद करते हैं? क्या खाने में आपकी पसंद कभी बदली है? इत्यादि। उनके जवाबों में पैटर्न स्पष्ट तौर पर उभरने लगता था।

सबसे पहले स्वाद में हैरान कर देने वाली विविधता दिखती थी। दूसरे, पसंदगी और नापसंदगी की सूची बनाने पर कई खाने की चीज़ें दोनों सूचियों में साझा तौर पर दिखती थीं। 'मुझे जो पसंद है, तुम्हें उससे घृणा हो सकती है', यही पैटर्न स्पष्ट हो रहा था। पसंद की प्राथमिकताओं में इतनी विविधता होने के पीछे अकसर कोई वजह होती थी— किसी के कहीं रहने की वजह से या धर्म, जेंडर, जाति, क्षेत्र या वर्ग के लिहाज़ से सांस्कृतिक तौर पर क्या स्वीकार्य है या नहीं। यह भी स्पष्ट हो रहा था कि खाने के बारे में हमारी पसंद बदल जाती है।

फिर बातचीत इस ओर मुड़ जाती कि क्या यौनिकता के साथ हम इसकी कोई समानता देख पाते हैं। ये स्पष्ट था कि 'दोनों में संभावनाएं अनंत हैं'। यौनिकता और खाने के स्वाद में उभर कर आने वाली एक और समानता यह थी कि, 'मुझे जो पसंद हो उससे आपको अरुचि या यहां तक घृणा हो सकती है।' एक और समानता यह निकली कि यौन इच्छा और खाने की रुचि दोनों चंचल हैं, वे बदल सकती हैं। इन समानताओं की बात को बढ़ाते हुये हमने तर्क किया कि भोजन और स्वाद की तरह हालांकि यौनिकता प्राकृतिक और सहज प्रवृत्ति जैसी दिखती है लेकिन वह एक सामाजिक निर्मिति है। भोजन में स्वाद की तरह ही यौन इच्छाएं भी देह में, यानी कि जैविक दुनिया में बसी दिखती तो हैं, लेकिन वह जेंडर, वर्ग और क्षेत्र वगैरह से प्रभावित होती हैं।

अनेक समानताओं के बावजूद भोजन और यौनिकता में महत्त्वपूर्ण फ़र्क़ भी सामने आए। हम यौन व्यवहार पर उतनी सहजता से बात नहीं कर सकते जिस तरह भोजन की पसंद के बारे में करते हैं। भोजन से जुड़े स्वाद संबंधी फ़र्क़ को मोटे तौर पर सहन कर लिया जाता है (हालांकि राजनीतिक उबाल वाले किसी माहौल में, मसलन धार्मिक पहचान के संघर्ष के दौर में भोजन संबंधी पसंद का भारी प्रतीकात्मक महत्व हो सकता है)। लेकिन यौन इच्छाओं में पाये जाने वाले विभिन्न फ़र्क़ ऐसे अतिक्रमणकारी व्यवहार को न्योता दे सकते हैं जो बंदिश की शक्ल में मज़ाक उड़ाने से लेकर हत्या जैसी चरम हिंसा तक पहुंच सकती है।

कार्यशालाओं से जुड़ी अनेकों गतिविधियां है, लेकिन अब हमें बढ़ना होगा कार्यक्रम से उभरी मुख्य सीखों पर।

- यौनिकता के बारे में बात करना अत्यंत ज़रूरी है और वस्तुतः संभव भी- खासकर ग्रामीण महिलाओं के संदर्भ में जो ज़्यादातर मध्यवर्गीय शहरी प्रतिभागियों की तुलना में कहीं ज़्यादा सहज थीं।
- महिलाओं के साथ हिंसा क्यों होती है, वे इसको कैसे महसूस करती हैं और क्या वे इस हिंसा के घेरे से बाहर निकल सकती हैं— यौनिकता से जुड़े मुद्दों के साथ इन सारे सवालों का गहरा व करीबी रिश्ता है। कार्यक्रम में इस बात की झलक मिल सकी कि हम

कैसे क्षमता संवर्धन के ज़रिये महिला हिंसा पर अपनी पहलकदमियों को सुधार सकते हैं। एक भागीदार ने कहा, (हिंसा के मसले आने पर) "हम पहले हिंसा, खाने-पीने, कपड़ों की बात करते थे, लेकिन यौनिकता की कोई बात नहीं करते थे। मार-पीट सहन करने के बाद जब कोई औरत अपने पति के पास वापस लौटना चाहती, तो आम तौर पर हम कभी सहमत नहीं होते थे। लेकिन अब हम समझते हैं कि शायद उसे यौन सुख की भी ज़रूरत हो।"

- कार्यशालाओं से जुड़ी एक ट्रेनर ने कहा, "आर्थिक निर्भरता, परित्यक्ता से जुड़े कलंक, विवाह का भीतर तक आत्मसात किए गए महत्त्व जैसे कारकों को तो हम भली-भांति जानते और समझते हैं। कार्यशालाओं से जुड़ी इन कार्यशालाओं में यौनिकता के इस महत्वपूर्ण आयाम को भी समझने का मौका मिला।"
- महिला सशक्तीकरण के लिए यौनिकता का आयाम बेहद ज़रूरी है। एक तो क्योंकि यौन इच्छाओं की पूर्ति अपने आप में अभिव्यक्ति के लिए राह बनाने, ऊर्जा प्रदान करने और सशक्त करने वाली प्रक्रिया है और दूसरे चूंकि महिलाओं की यौनिकता पर नियंत्रण महिलाओं की गतिशीलता पर बंदिश लगाना है और स्वास्थ्य-सुरक्षा व शिक्षा तक उनकी पहुंच को भी बाधित करता है।
- यौनिकता के प्रति एक राजनैतिक रवैया अपनाने की ज़रूरत है। एक ऐसा नजरिया जो यौनिकता और सत्ता के विभिन्न स्वरूपों व तमाम अंतर्संबंधित आयामों के बीच के रिश्तों व कड़ियों की पहचान करता है— चाहे वह जेंडर, जाति और धर्म के रूप में हो या वर्ग संबंधी विचारधाराओं, भौतिक वास्तविकताओं और ढांचों के रूप में।

'जो व्यक्तिगत है, वह राजनीतिक है' ये नारा हमेशा महिला आंदोलन के केंद्र में रहा है। अब ज़रूरत है कि यौनिकता के आयाम को भी इसी नज़रिए से हम अपने काम और जीवन में उतारें।

साथिन ठंडी-ठंडी

शान्ति

साथिन ठंडी-ठंडी ओस की बूंद का छूना
साथिन धीरे-धीरे पलकों की छांव में आ जा
साथिन धीरे-धीरे प्यार की छांव में आ जा
राहें निहारूं तेरी बाट मैं जोऊं री
सूनी गली और रात अंधेरी
ये भी कोई मिलना है, ये भी कोई छिपना
मैं थक जाऊं साहस तू बंधाये री
तू गिर जाये मैं थाम लूं री
ये भी एक मिलना है, एक दूजी को समझना
मन उजियाला मांगे जीवन अंधेरा
घर बाहर क्यों लागे मोहे सूना
काली उलझी रातों में, नया उजाला हम खोजें।

आज़ादी की राह पर

गौतम भान

दिल्ली के उच्च न्यायालय ने धारा 377 पर अपना ऐतिहासिक फ़ैसला सुनाते वक़्त बड़ी ही सूझ-बूझ से शब्द चुने– न्यायाधीश शाह और न्यायाधीश मुरलीधर ने कहा, *"अगर भारत के संविधान का कोई एक बुनियादी उसूल है, तो वह है समावेश की भावना। इस न्यायालय का मानना है कि संविधान में बसा यह मूल्य हमारे समाज का एक ऐसा अभिन्न हिस्सा है जिसे हमने पीढ़ी दर पीढ़ी सींचा है। भारतीय संवैधानिक कानून इस बात की इजाज़त नहीं देता कि एलजीबीटी लोगों के बारे में आमतौर पर फैली ग़लतफ़हमियां हमारे आपराधिक कानून पर ज़बरन थोपी जाएं। हम यह भुला नहीं सकते कि भेदभाव समानता का विरोधी है, और केवल समानता भाव का आदर करने से ही हर व्यक्ति को सम्मान मिल सकेगा।"*

दिल्ली उच्च न्यायालय का कमरा नं. 1, विषय-सूची का विषय नं. 1, 2 जुलाई की सुबह, 10:30 का समय। चंद कार्यकर्त्ताओं के हाथों में प्रवेश-पास, सभी धारा 377 के ख़िलाफ़ दशक-भर के संग्राम के कुछ पल याद करते हुए। और बस इन सहज शब्दों के ज़रिये और उस इलेक्ट्रॉनिक पास के सहारे, दशकों से चल रहे आंदोलन और आठ सालों से चल रही कानूनी लड़ाई का समापन। और इतना काफ़ी था। जब फ़ैसला पढ़ा जा रहा था, कमरे में भावनाओं का आलम महसूस करने लायक था। हमारे आंसू बह रहे थे, न सिर्फ़ इसलिए कि यह हमारी जीत थी, पर इसलिए भी कि इस फ़ैसले ने हमें आज़ादी बख्श दी थी। यह फ़ैसला सम्मान के बारे में है। यह फ़ैसला उस हिन्दुस्तान के बारे में है जिसकी कल्पना नेहरू ने की थी – एक ऐसा हिन्दुस्तान जो आख़िर अपनी बाहें फैलाकर उन सभी को अपनाये जो यहां रहते हों। यह फ़ैसला बराबरी, सम्मान, अधिकार जैसे शब्दों के बारे में है जो लाखों क्वीयर नागरिकों की ज़िंदगियों में गहरायी से उतरकर, उन्हें एहसास दिलाते हों कि अब अपने ही देश की ज़मीन पर, वो भी इत्मीनान से अपने कदम बढ़ा सकेंगे।

यह फ़ैसला हमें वापस अम्बेडकर तक ले जाता है, जिनका ज़िक्र करते हुए न्यायाधीशों ने हमें याद दिलाया कि किस लगन से वह उस संविधान के लिए लड़े थे जिसकी उन्होंने कल्पना की थी। उनका आग्रह था कि हमारे देश की कानून व्यवस्था एक संवैधानिक नैतिकता पर आधारित होनी चाहिए, न कि समाज में प्रचलित नैतिकता पर। सार्वजनिक नैतिकता यह तय नहीं कर सकती कि राज्य के हित में क्या है, बल्कि संविधान में निर्धारित उसूल ही इसका फ़ैसला कर सकते हैं। आने वाले दिनों में, ज़ाहिर है, मीडिया में भी और आमतौर पर लोगों के बीच नैतिकता पर खूब बहस होगी, और इस दौरान हमें अपनी-अपनी व्यक्तिगत नैतिकता के अलावा उस नैतिकता को हर दम सामने रखना होगा, जो नागरिक होने के नाते हम सब की नैतिकता है।

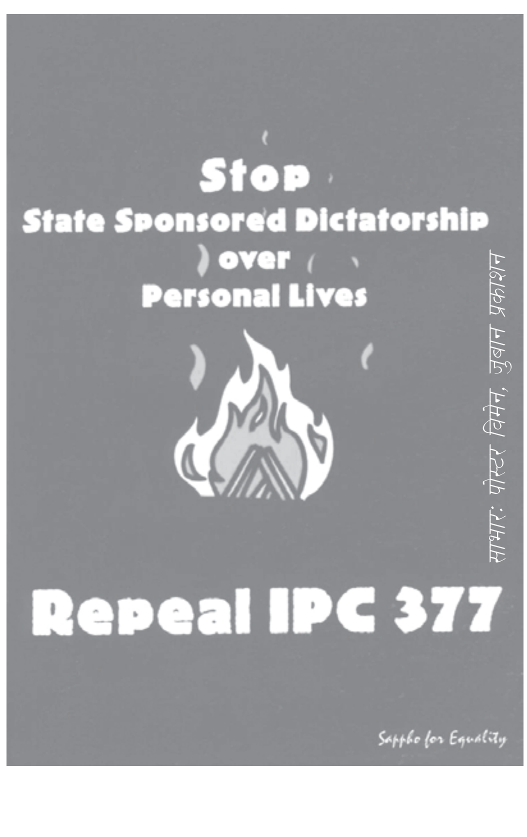

साभारः पोस्टर विमेन, ज़ुबान प्रकाशन

यह फ़ैसला समानता के बारे में है। संविधान के अनुच्छेद 15 का उल्लेख करते हुए न्यायाधीशों ने तय किया कि भेदभाव के ख़िलाफ़ अधिनियमों में 'सेक्स' शब्द के मायने में 'यौनिक प्रवृत्ति' भी शामिल होनी चाहिए। जेंडर या सेक्स के आधार पर भेद-भाव के

ख़िलाफ़ सभी नियम-कानून अब यौनिक प्रवृत्ति के आधार पर भेदभाव के भी ख़िलाफ़ माने जायेंगे। अनुच्छेद 15 को अपने फ़ैसले का अहम हिस्सा बनाकर न्यायाधीशों ने हमें इस बात से अवगत करवाया है कि क्वीयर लोगों को आपराधिक न मानने का मतलब है उनके साथ हर मौके पर सम्मान और समानता के साथ व्यवहार करना — चाहे वो काम की जगह हो या अस्पताल, अपना घर हो या कोई सार्वजनिक स्थल।

बहरहाल, इस फ़ैसले को हम सिर्फ़ क्वीयर होने के नाते न देखकर, इसे अपने यौनिक प्रवृत्ति या जेंडर या मज़हब या जाति या भाषा या प्रदेश से जुड़ी पहचान से हटकर, महज़ भारतीय होने के नाते समझें, तो किस तरह समझें? देशभर में अधिकारों के लिए तरह-तरह के आंदोलन और संघर्ष चलते आये हैं और अभी भी जारी हैं। लोग सरकार और पूरी व्यवस्था के प्रति निराश और कुंठित हैं। कइयों का कहना है कि भारत में, ख़ास करके इस नये भारत में, बदलाव लाना नामुमकिन है, जिसकी चमक-दमक ने उसे उस भारत से अलग कर दिया है जिसमें ज़्यादातर लोग बसते हैं। लेकिन इस लेखक सहित हम सबके राज्य-व्यवस्था में लुप्त हो रहे विश्वास को इस फ़ैसले ने एक नया बल दिया है। यह इस बात का संकेत है कि हमारा संविधान अभी ज़िंदा है, और आंदोलन या संघर्ष की कभी-कभी जीत भी होती है। यह हर भारतीय नागरिक के लिए खुशी की बात है — क्योंकि आज सिर्फ़ क्वीयर अधिकारों की ही नहीं बल्कि हम सभी के अधिकारों की रक्षा हुई है।

आगे सावधानी से काम लेना ज़रूरी होगा। क्वीयर आंदोलन का हमेशा ही मानना रहा है कि सम्मान पाने की लड़ाई सिर्फ़ अदालत में जीत लेना काफी नहीं होगा। हमारा संघर्ष उन सभी स्थानों में जारी रहेगा जहां नफ़रत और भेदभाव का सीधा असर क्वीयर लोगों के जीवन पर पड़ता हो — परिवारों में, डॉक्टरों के क्लीनिक में, पुलिस थाने में, कार्यालयों में और सड़कों पर। कानूनी बदलाव के चलते यह सब रातों रात नहीं बदलेगा। हमारी लड़ाई अभी ख़त्म नहीं हुई है, लेकिन इस फ़ैसले ने हमारे बंधे हाथ खोल ज़रूर दिये हैं। लोकमत बदलने के लिए तर्क-वितर्क का हमारा यह खेल अब ऐसे समतल मैदान पर खेला जायेगा, जहां नागरिक होने के नाते हम सब बराबरी से एक दूसरे का सामना कर सकेंगे। फ़ैसले के शब्द तो हमारे साथ हैं ही, अब अदालत के बाहर की दुनिया में भी इनमें जान फूंकने का मौका मिल गया है।

सबसे बड़ा परिवर्तन तो क्वीयर लोगों के दिलों दिमाग में होगा। ख़ुद को अपना पाना, अपने-आप पर शर्मिन्दगी महसूस न करना, अधिकार पाने के अपने अधिकार में विश्वास रखना, अक्सर यह एक लंबा और अकेलेपन से घिरा सफ़र होता है। अपने आप को बराबर का नागरिक मान पाने में और भी ज़्यादा वक़्त लगता है। जब कोई क्वीयर औरत आईने में देखती है तो उसे दिखने वाले प्रतिबिंब तक इस फ़ैसले से किस तरह प्रभावित होता है, इस सच्चाई के मायने और मूल्य दोनों का ही शब्दों में बयान मुश्क़िल है।

उचित होगा कि धारा 377 के बारे में अपनी राय देने वाले भारत सरकार के मंत्री अपनी 'सर्वसम्मति' तक पहुंचने से पहले इस फ़ैसले को अच्छी तरह पढ़ लें। अपने आप से पूछ लें कि वे फ़ैसले के किन सिद्धांतों पर फिर ग़ौर करना चाहते हैं। साथ ही याद रखें कि नेहरू और अम्बेडकर ने सभाओं में कुशल राजनीतिज्ञ कहलाने वाले आदमी और औरतों की कल्पना की थी। अब समय आ गया है कि वे हम सबको साथ लेकर उस काल्पनिक सभा में लौटें।

समावेश की भावना, उदारता, संवैधानिक नैतिकता, समानता। उस भूतपूर्व कल्पना वाले भारत में ये शब्द सिर्फ़ क्वीयर लोगों के संदर्भ में या समलैंगिकता का उल्लेख करने के लिए इस्तेमाल नहीं हुए थे। ये शब्द एक बार फिर पूरी तरह से भारतीय बनने जा रहे हैं। न्यायाधीशों ने हमें याद दिलाया है कि ये उसी भारतीय संस्कृति में बसे मूल्य हैं जिनकी "रक्षा" करने के लिए इतने लोग उतारु हैं। हम "गे" हों या "स्ट्रेट", यौनिकता को लेकर, समलैंगिकता को लेकर हमारे जो भी विचार हों, हम सबको पहचानना होगा कि इस फ़ैसले में एक धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक, संवैधानिक, स्वतंत्र भारत की विजय हुई है। हम सबको इस पर गर्व करना चाहिए। आज सभी क्वीयर इन्सान गर्व और ख़ुशी के साथ अपने आपको आम नागरिक मान सकते हैं- आज़ाद, सबके समान, एक नये माहौल में चैन की सांस लेते हुए।

आज क्वीयर लोग सबके हमवतन बन गये हैं। आज आख़िरकार वे महसूस कर पा रहे हैं कि उनके भी पैरों तले ज़मीन है।

साभारः समता की नीवं पर, क्रिया

संवाद

एक ऐतिहासिक जीत

2 जुलाई, 2009 - एक सुनहरा दिन। आज कानून की धारा 377 के ख़िलाफ़ चल रही लड़ाई में बड़ी जीत मिली है। दिल्ली हाई कोर्ट ने अपने फैसले में कहा है कि *"वयस्कों के बीच अपने व्यक्तिगत, निजी जीवन में बनाए गए किसी भी प्रकार के यौन व्यवहार अपराध नहीं हैं।"* इसको लेकर दिल्ली के जंतर-मंतर के पास बड़ी चहल-पहल है। ढेर सारे लोग रंग-बिरंगे पोस्टर-बैनर लेकर खड़े हैं। कोई गा रहा है 'आदमी हूं, आदमी से प्यार करता हूं', तो कोई 'बावरा मन चाहे, देखने चला एक सपना' की धुन पर झूम रहा है। दूसरी जगह भी विविध यौनिक पहचान वाले लोग खुशी ज़ाहिर कर रहे हैं। अखबारों में और टेलिविज़न पर ये खबरें छाई हुई हैं। जिन लोगों ने कभी यौनिकता के मुद्दे पर बात नहीं की होगी, वे भी बोल रहे हैं। घर-बाहर चारों तरफ खुलकर इस पर चर्चा हो रही है। सालों की चुप्पी मानो रातों-रात टूट गई है। आखिर अदालत का यह फैसला इतना महत्वपूर्ण क्यों है?

धारा 377 बहुत पुराना कानून है। 1860 में इसे अंग्रेज़ों ने बनाया था। यह उन्होंने इंग्लैंड के उस समय के समाज की नैतिकता के आधार पर बनाया था। उसे हिन्दुस्तान में भी लागू कर दिया। धारा 377 के अनुसार किसी पुरुष, महिला या पशु के साथ 'प्राकृतिक नियमों' के विरुद्ध यौन संबंध बनाने वाला अपराधी है। इसके अनुसार दो वयस्कों के बीच मुख मैथुन, गुदा मैथुन आदि क्रियाएं अप्राकृतिक हैं। ऐसा करने वाले को आजीवन या फिर 10 साल तक की जेल की सज़ा हो सकती है। उसे जुर्माना भरना पड़ सकता है। इस कानून में उन सभी यौन क्रियाओं को अप्राकृतिक और गलत करार दिया गया है, जो प्रजनन से जुड़ी नहीं। इसलिए यह कानून सभी पर लागू था – चाहे वे शादीशुदा ही क्यों न हों। लेकिन इसके आधार पर खासकर समलैंगिक लोगों को प्रताड़ित किया गया है। इसमें सहमति के साथ और सहमति के बिना बनाए गए संबंधों में कोई फ़र्क़ नहीं किया गया है।

हमारे देश में इस कानून के ख़िलाफ़ आंदोलन की शुरूआत हुई। सबसे पहले 1994 में एड्स भेदभाव विरोधी आंदोलन (ए.बी.वी.ए.) ने अदालत में इसके लिए याचिका दी थी। फिर 2001 में दिल्ली हाई कोर्ट में जनहित याचिका (पी.आई.एल.) डाली गई। 'नाज़ फाउंडेशन' नामक एक गैर-सरकारी संस्था ने यह पहल की थी। इसकी कानूनी लड़ाई 'लॉयर्स कलेक्टिव' नाम की संस्था के माध्यम से लड़ी जा रही थी। इस याचिका में कहा गया कि यह कानून व्यक्ति के 'जीवन जीने का अधिकार' के ख़िलाफ़ है। इसका इस्तेमाल समाज द्वारा शोषण और भेदभाव को बढ़ावा देता है।

चूंकि धारा 377 का उपयोग बच्चों के ख़िलाफ़ यौन शोषण को रोकने के लिए भी होता है, इसलिए याचिका में खास मांग की गई। उसमें पूरी तरह कानून खत्म करने की बात नहीं उठाई। मांग की गई कि निजी ज़िंदगी में बालिग व्यक्तियों के बीच सहमति से बनाए गए यौन संबंधों को अपराध न माना जाए।

देश में 2003 में भाजपा के नेतृत्व वाली एन.डी.ए. की सरकार थी। सरकार ने कहा कि इस कानून में बदलाव से मनमाने यौन व्यवहार को छूट मिल जाएगी। उसका तर्क था कि हिंदुस्तान के लोगों के लिए समलैंगिकता मुद्दा नहीं है। इसके जवाब में महिला अधिकार, बाल अधिकार, स्वास्थ्य अधिकार, मानवाधिकार आदि के लिए काम करने वाले कुछ संगठन सामने आए। उन्होंने इस मुद्दे पर एक मंच बनाया। इसका नाम था 'वॉयसेज़ अगेंस्ट 377'। इस मंच ने समलैंगिकता के मुद्दे पर जागरूकता बढ़ाने का काम किया। 2006 में दिल्ली हाई कोर्ट में मुख्य याचिका के समर्थन में एक याचिका दी। इन्हीं याचिकाओं पर सुनवाई करते हुए 2 जुलाई, 2009 को फैसला आया था।

फैसला देने वाले जज शाह और जज मुरलीधर ने तर्क दिया, "हमारे संविधान का मूल मूल्य अलग-अलग लोगों को सम्मिलित करने का है। हमारा यह मानना

है कि यह मूल्य पीढ़ियों से समाज में बसा है।'' जजों ने पंडित नेहरू, डॉ. अंबेडकर आदि के हवाले से कहा कि देश का संविधान दुनिया को अपने सपनों और आशाओं के बारे में बताता है। यदि समाज द्वारा कुछ लोगों के प्रति भेदभाव किया जाता है तो यह ज़रूरी नहीं कि संविधान भी इसी बात को मान्यता दे। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया, ''संविधान साफ कहता है कि धर्म, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। यहां 'लिंग' की परिभाषा में 'लैंगिकता' को शामिल करना चाहिए।'' यानी फैसले के मुताबिक जिस तरह जेंडर के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता, आज से यौनिकता के आधार पर भी भेदभाव करना संविधान के ख़िलाफ़ है।

इस ऐतिहासिक फैसले का विरोध करने वालों की भी कमी नहीं। कुछ धर्मगुरू और राजनीतिक दल भी हल्ला मचा रहे हैं। शायद किसी भी क्रांति की शुरूआत से समाज के नियमों को धक्का पहुंचता ही है। जैसे 1856 में विधवाओं को दोबारा शादी करने की इजाज़त देने वाले कानून पर भयानक हंगामा हुआ था। मगर लड़कर हासिल की गई ऐसी सफलताओं से हमें बदलाव की उम्मीद दिखाई देती है।

साभारः आपका पिटारा, अंक 96,
चाहतः यौनिकता की विविधता और राजनीति

नया प्रकाशन

जागोरी के सुरक्षित दिल्ली अभियान के लिए निकाली गई पठन सामग्री

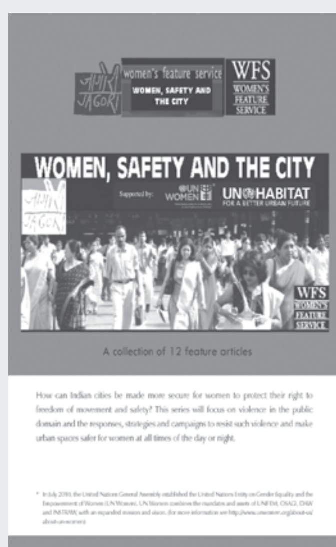

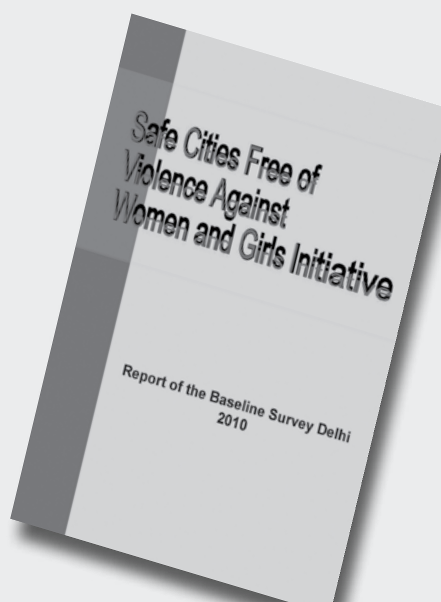

प्रतियां मंगवाने के लिए संपर्क करेंः
महाबीर सिंह, जागोरी
दूरभाषः 011-26691219/20 • distribution@jagori.org

संवाद

सही या गलत के घेरे में 'पोर्नोग्राफ़ी'

जुही

पोर्नोग्राफ़ी ग्रीक भाषा के दो शब्दों— पोर्न (रंडी) व ग्राफोज़ (लेखन, चित्रांकन) को मिलाकर बनाया गया है। इसका अर्थ है— वेश्याओं या रंडियों के बारे में लिखना। पुरातन काल से ही नगरवधू, रंडी, वेश्या को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है उसे एक यौन दासी समझा जाता है।

महिलाओं के चित्रण का प्रश्न अश्लीलता, सेंसरशिप व शरीर की राजनीति से जुड़ा है। कौन यह तय करता है कि अश्लील क्या है? ऐसा तय करने के आधार क्या हैं? इन तमाम सवालों पर अनेक विचार व नज़रिये हैं जो एक व्यक्ति की अपनी निजी सोच पर आधारित हैं। पर एक बात स्पष्ट है— हमारे पितृसत्तात्मक नैतिक पुर्वाग्रहों से घिरे समाज में यौनिकता व औरतों के शरीर से जुड़ी हर बात पर विरोध-प्रतिरोध होना बहुत ही स्वभाविक है।

पोर्नोग्राफ़ी विमर्श व अध्ययन के विषय पर है जिस पर नारीवादियों के बीच भी आम सहमति नहीं है। कुछ का मानना है कि पोर्नोग्राफ़ी हिंसा दर्शाने वाली छवियां या ज़बरदस्ती बनाए जाने वाले यौन संबंधों का प्रदर्शन करके महिला हिंसा को बढ़ावा देती है। यह महिला के शारीरिक अधिकारों का हनन करती है। यौन क्रिया महज़ पुरुष कामुकता की संतुष्टि का ज़रिया मात्र है। पोर्नोग्राफ़ी एक तरह से महिला को अपमानित करने का तरीका है और इस लिहाज़ से उसे यौन हिंसा के रूप में देखा जाना चाहिए। पोर्नोग्राफ़ी की रचना में औरतों का यौन व आर्थिक शोषण किया जाता है उसे उपभोग की वस्तु मानकर एक नैसर्गिक दर्जा दिया जाता है। पोर्नोग्राफ़ी विरोधी मानते हैं कि यह औरतों की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाती है, तथा पुरुषों को महिला अधिकारों के प्रति कम संवेदनशील बनाती है इसलिए पोर्नोग्राफ़ी विरोधी कानूनों का बनना महिला अधिकारों की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

अन्य नारीवादी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के आधार पर पोर्नोग्राफ़ी का विरोध नहीं करतीं। वे मानती हैं कि औरतें भी यौन कल्पनाओं का आनंद उठाती हैं। पोर्नोग्राफ़ी कुछ के लिए आमदनी का साधन तथा कुछ के लिए आनंद का ज़रिया होता है। समाज में व्याप्त 'यौन नकरात्मकता' औरतों को स्वच्छंद यौन अभिव्यक्ति से रोकती है और इस तर्क के आधार पर पोर्नोग्राफ़ी यौन स्वतंत्रता में सहायक होती है।

कुछ नारीवादियों के अनुसार पोर्नोग्राफ़ी पर प्रतिबंध लगाने का अर्थ होगा सेंसरशिप को बढ़ावा देना। यह राज्य के नैतिक रवैये को समर्थन देना हो जायेगा व इससे राज्य की जनता के ऊपर नैतिक नज़रबंदी को बढ़ावा मिलेगा।

पोर्नोग्राफ़ी समर्थक समूह के विचार में उसका विरोध करने वाले समूह नैतिक व धार्मिक परम्परावादी हैं और उनकी नज़र में यह अश्लील तथा पारिवारिक व धार्मिक मूल्यों को भ्रष्ट करती है। पोर्नोग्राफ़ी समर्थक खुद को उदारवादी मानती हैं तथा निजी तौर पर पोर्नोग्राफ़ी सामग्री के इस्तेमाल को व्यस्क महिलाओं के यौन अधिकार की अभिव्यक्ति के रूप में देखती हैं।

कुछ नारीवादी पक्ष ऐसे भी हैं जो महिलाओं की यौन अभिव्यक्ति व शरीर पर अधिकार को मानती हैं परन्तु स्त्री शरीर की यौनिक छवि व प्रस्तुति का वे समर्थन नहीं करती। उनके मत में पोर्नोग्राफ़ी का सीधा संबंध अनैतिकता, अश्लीलता, नग्नता और अस्वस्थ यौन छवियों के प्रदर्शन से होता है।

इन सभी विचारधाराओं की समीक्षा से यह संकेत मिलता है कि पोर्नोग्राफ़ी विमर्श विभिन्न स्तरीय बहसों और चर्चाओं के केंद्र में है। भारत में फिलहाल 1986 का महिलाओं के अश्लील चित्रण विरोधी कानून मौजूद हैं इसके साथ-साथ कट्टरवादी व धार्मिक परम्परावादी तत्व अभिव्यक्ति के अधिकार की स्वतंत्रता को नियंत्रित करने के लिए अपनी पूरी ताकत संगठित कर रहे है। वे खुद को 'भारतीय नैतिकता और सभ्यता' का संरक्षक घोषित कर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के हक़ को सीमित और संकुचित दायरों में परिभाषित कर रहे हैं।

आमने-सामने

जुग-जुग जियेसु ललनवा

शशिकला राय

मुझे लक्ष्मी त्रिपाठी के बारे में लिखना है, देवदार की ऊंचाई-सी, रंग और गौरव से भरी, तितली की तरह फर्र-फर्र उड़ती, महुए की गंध की तरह गमकती। टी.वी. स्क्रीन उसके चेहरे की मासूमियत सोख लेती है। इतिहास ने 'बृहन्नला' में अर्जुन देखा था। यह 'अर्जुन' में 'बृहन्नला' है। शापित नहीं है। अपने मन से जीती है।

"बचपन से ही मैं किन्नर समुदाय के प्रति रोमांच ही नहीं बल्कि कशिश भी महसूस करती हूं। बड़े सारे किन्नर मेरे मित्र हैं।"

गहरे आवेश के साथ एक आंदोलन की तरह लक्ष्मी मौजूद रहना चाहती है। मैंने लक्ष्मी को सुना है, लक्ष्मी के बारे में सुना है। कैसे मिलूं इससे? खैर थोड़ी जद्दोजेहद के बाद लक्ष्मी से मिलने का सौभाग्य मुझे मिल ही गया।

अगले दिन ग्यारह बजे, कॉफ़ी कैफ़े डे में बैठी हूं। बेचैन और असहज हूं। अभिजात्य 'कैफे डे' में एक किन्नर के साथ बैठना? क्या कहेंगे लोग? इसी उधेड़बुन में थी कि सामने लक्ष्मी खड़ी थी— बल खाती, लहराती, जीन्स और टीशर्ट में कसी, छह फुट की लंबी-दुबली काया कंधे तक घुंघराले-छितराए बाल, छटपटाती मछली की तरह दो आंखें, होंठों पर गहरी मादक लिपिस्टिक। मैं हड़बड़ाहट में जब तक खड़ी होती हूं, तब तक टहनी सी लचीली बांहें मुझे घेर चुकी थीं, "हाय... देअर इज़ माई बच्चा।"

मुझसे बात नहीं हो पा रही। अटक-अटककर पूछती हूं। "मेरे कुछ मित्र मानते हैं कि आप लोग बदमाश होते हैं और आपराधिक गतिविधियों में भी...।" लक्ष्मी मेरी आंखों में ऐसे देखती है कि मैं बरबस नीचे देखने लगती हूं। "सुनो मेरी जान, आतंकवादियों की लिस्ट में कितने नाम हिजड़ों के हैं। घोटालों, भ्रष्टाचार और बलात्कार में? हां, एक बात और सच्चे हिजड़े किसी को जबरन हिजड़े भी नहीं बनाते। दो प्रतिशत बुरे लोगों के आधार पर आप सारे समाज का मूल्यांकन करेंगे? दैट इज़ नॉट फेअर।" मैं कहती हूं, "लक्ष्मी क्यों न हम तुम्हारे बचपन की ओर लौटें।" "हां, क्यों नहीं?"

"लक्ष्मी तुम बचपन में दूसरे बच्चों के साथ असहज महसूस करती थीं न?"

"हां। मैं पूरी तरह कटी-कटी ही रहती थी। क्योंकि मैं दमे की मरीज़ थी।" कैसे समझाऊं कि मैं जानना चाहती हूं, तुम सामान्य बच्चा नहीं थीं, तुम हिजड़ा बच्चा थीं। सो तुम्हारा अनुभव। शायद वह असमंजस भांप गई थी। लक्ष्मी ने कहा, "मेरा नाम लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी उर्फ राजू है और मैं बायोलॉजिकल मेल पैदा हुआ था। और जिस हिजड़े ने मेरे जन्म की बधाई ली वही बाद में मेरा गुरु बना।" मैं अवाक्। "लक्ष्मी तुम हिजड़ा नहीं पैदा हुए थे।" वह हंस पड़ी, "मैं मुंबई के मिठीबाई कॉलेज से बीकॉम

हूं।" यह युवक स्वेच्छा से हिजड़ा समुदाय में गया। असंभव। मेरा सिर चकरा गया। कोई हिजड़ा कैसे बनता है? मैं दो समानांतर दुनियाओं के बीच अपने को महसूस कर रही थी।

लक्ष्मी बाल्यकाल में ही अपनी कमनीयता और सौंदर्य के कारण पुरुषों के आकर्षण का केंद्र बन जाती थी। छठी-सातवीं तक जाते-जाते लक्ष्मी घोषित रूप से 'गे' हो चुकी थी। पहली बार घर के अत्यंत नज़दीकी व्यक्ति ने उसका शोषण किया। फिर चुप्पी और भय के बीच एक खुला और खाली मैदान-सी लक्ष्मी में सरपट दौड़ लगाने वालों की कमी नहीं। चौदह साल का 'गे'— पुरुषों का बार्बीडॉल। मैं कहती हूं, "लक्ष्मी मैं लिखूंगी तुम सोलह-सत्रह तक आते-आते 'गे' हो गई थीं।" "नहीं, इस उम्र तक मैं महामाया हो चुकी थी। तुम्हें उम्र में आगा-पीछा करने की ज़रूरत नहीं।" आज लक्ष्मी प्रतिबद्ध स्त्रीवादी है। लक्ष्मी के मन में विद्रोह अंकुरित होने लगा था। "तुम समझती हो मैं इकतीस की हूं पर सच्चाई यह है कि मेरा अनुभव कम से कम इकतीस पूरी जी गई ज़िंदगियों का है।

लक्ष्मी में बचपन से ही नृत्य के प्रति जुनून था, इसी जुनून ने इस छोटे से बालक को नृत्य का शिक्षक बना दिया। लक्ष्मी भरतनाट्यम में पोस्ट ग्रेजुएट है। कई फ़िल्मों और वीडियो अलबम में प्रोफेशनल कोरियोग्राफी की है। स्वयं की नृत्य की पाठशाला स्थापित की थी 'विद्यावर्धनी नृत्य पाठशाला'। मैं बीच में टोककर पूछती हूं, "लक्ष्मी, कभी किसी लड़की के प्रति कभी आकर्षण नहीं महसूस किया?" "बिलकुल नहीं। लड़कियों के लवलेटर भी मिले। न जाने क्यों मैं लड़कों के प्रति ही आसक्त होती थी।" लक्ष्मी को लड़के आते-जाते चिढ़ाते थे, उसके हाव-भाव को देखकर। लक्ष्मी अपने भीतर आत्मविश्वास की कमी महसूस करती थी। (लक्ष्मी भूल से भी अपने साथ था, करता हूं, कहता हूं नहीं लगाती जबकि उसके परिवार और उस समय के मित्र गलती से भी उसके लिए स्त्रीलिंग का प्रयोग नहीं करते)। मैं इस बात पर हैरान हो रही थी कि लोगों का रवैया लक्ष्मी के प्रति बेहद सम्मानजनक एवं प्रेमभरा था जबकि मैं बचपन से ही किन्नरों के प्रति समाज में अलग रवैया देखती आई थी। मेरा मन लक्ष्मी से बहुत कुछ सुनने के लिए बेताब था।

लक्ष्मी स्मृतियों से टूट-टूटकर जुड़ती है, और जुड़-जुड़कर टूटती है। कहती है, "बहुत से आत्मीय रिश्तों का कत्ल बचपन में ही हो गया था। और यह लोककथाओं में होने वाला कत्ल तो था नहीं कि यहां ख़ून गिरा तो आम का पेड़ उग आया। रिश्तों के जिन-जिन क्षेत्रों में ज़मीन बंजर हुई वहां न कुछ पनपना था न कुछ पनपा।" उसने स्कूल में दोस्ती हमेशा दबंग लड़कों से की ताकि चिढ़ाने वालों लड़कों से निजात पा सके।

लक्ष्मी ने स्कूली पढ़ाई खत्म करते ही 'मिठीबाई कॉलेज' में दाखिला लिया। यहां कोई लक्ष्मी से छेड़छाड़ नहीं करता था सो आत्मविश्वास बढ़ने लगा। लेकिन 'गे' की दुनिया में उसकी रूह तड़पती थी। ज़िंदगी पार्टी और सेक्स का पर्याय नहीं हो सकती। ज़िंदगी का मकसद इतना छोटा नहीं हो सकता। "मैं परिवार और समाज से अलग होकर भी उसी का हिस्सा हूं। उनसे पूरी तरह स्वयं को विच्छिन्न नहीं कर सकती। मेरी दुनिया कौन-सी है?" लक्ष्मी जीवन के सनातन प्रश्न से जूझ रही थी अस्तित्व की तलाश। जीवन से कुछ बहुमूल्य समाज को लौटा देने की तड़प।

लक्ष्मी नौ बार अमेरिका जा चुकी है। हिजड़ों के मानवीय मूलभूत अधिकारों को लेकर संघर्षरत है। अमेरिका की नागरिक बनकर रह सकती है। पर वह कहती है— "मैं भारत छोड़कर जी नहीं सकती! जिस देश की ज़मीन पर आप जन्म लेते हैं, उसके प्रति आप क्या महसूस करते हैं? राष्ट्रप्रेम एक भावना है, उसका संबंध हृदय से है। लिंग से नहीं।"

अचानक लक्ष्मी कहती है, "मैं अपने ब्वायफ्रेंड को बुलाती हूं। दो बच्चों के पिता 'कैंसर' के लिए काम करने वाले गोल्डन एन.जी.ओ. के चेयरपर्सन 'दीपचंद'।" मैं इस खूबसूरत नौजवान को लक्ष्मी के पास बैठते हुए पाती हूं। बेहद सहजता और आत्मीयता के साथ। दो पुरुषों को उनके बीच एक स्त्री-पुरुष के धरातल पर पनपे प्रेम की स्पष्ट स्वीकारोक्ति के साथ इतने नज़दीक से पहली बार देख रही हूं।

लक्ष्मी पारदर्शी है। नैतिक है, बेहद ज़िम्मेदार भी। वह अपने परिवार में बड़े पुत्र का दायित्व निभाती है। लक्ष्मी समाज का सुयोग्य नागरिक है।

एक दिन के अंतराल पर पुनः लक्ष्मी से मिलने जाती हूं, लक्ष्मी के घर पर। शरीर पर बस बनियान और तौलिया।

बाल पीछे की ओर बंधे हुए। मेकअप विहीन चेहरा-उसका अपना चेहरा। मैं निर्निमेष उसकी तरफ देखती रह जाती हूं। मैं और मेरे भीतर की स्त्री भी उसे देख रही है। सिस्टरहुड के भाव से भीगा स्त्री मन और पुरुष तन देख रही हूं। अर्द्धनारीश्वर का मिथ मेरे सामने मूर्त और साकार था शिव का यह रूप कहीं...? लक्ष्मी अपने पुरुष रूप में भी उतनी ही आकर्षक है। लक्ष्मी की मां और लक्ष्मी के कुछ शिष्य भी वहां मौजूद हैं। मेरे मुंह से बेसाख्ता गाली निकल पड़ी। "पागल, बेवकूफ, नालायक, हिजड़ा होने की क्या ज़रूरत थी? बिना हिजड़ा हुए भी हिजड़ों के लिए काम किया जा सकता था।" मैंने मां से कहा— "शादी करो इसकी।" लक्ष्मी की आंखें हंसी थीं। फिर उसके होंठों से शरारत बुलबुले की तरह फूटी। ''तुम तैयार हो तो बोलो।''

लक्ष्मी अब तक सफल कोरियोग्राफर बन चुकी थी। इसी समय उसकी मुलाकात शबीना नामक हिजड़े से हुई। सी.एस.टी. स्टेशन पर शबीना को भूख लगी थी लक्ष्मी ने कहा, "चलो यहां के होटल में कुछ खाते हैं।" शबीना सहम गई— मैं इतने बड़े होटल में तुम्हारे साथ कैसे बैठ सकती हूं? लक्ष्मी के भीतर का बुद्ध रो पड़ा— "अरे, तुम खैरात में नहीं खाओगी। मूल्य चुकाने वाला केवल उपभोक्ता और ग्राहक होता है, समझी तुम।" एक कलाकार की कला की बुनियाद उसकी संवेदनशीलता ही होती है। अचानक लक्ष्मी के भीतर का द्रव्य पदार्थ ठोस शक्ल लेने लगा। उसने शक्ति की इस कसमसाहट और चेतना को महसूस किया। लक्ष्मी कोरियोग्राफर था। मॉडल कोऑर्डिनेटर था। इसका 'लावणी डांस ऑफ़ फायर' महाराष्ट्र में धूम मचा चुका था। आत्मविश्वास से लक्ष्मी कहती है, ''मैं बिंदास होती गई, बेफिक्र और बेपरवाह नहीं।'' मैंने संकल्प लिया कि आजन्म हिजड़ों के मूलभूत अधिकारों के लिए संघर्ष करूंगी।"

लक्ष्मी ने हिजड़ा समुदाय में शामिल होने का निर्णय लिया। शबीना के द्वारा बताए गए पते पर पहुंची। वह शबीना को अपना गुरु मान चुकी थी। शबीना की गुरु लता और उनके चेले भायखल्ला कंपाउंड में थे। लक्ष्मी ने पहुंचते ही कहा, ''मुझे हिजड़ा होना है, कितनी फीस लगेगी?'' हिजड़ों का दरबार हंस पड़ा। यहां एडमिशन फीस नहीं लगती। गुरु ने देखा फर्राटेदार अंग्रेज़ी बोलने वाला स्टाइलिश लड़का। उनके मुंह से निकला, ''असा स्टाइलिश मुलगा हिजड़ा होणार कसा साठी?'' लेकिन लता की गुरु ने लक्ष्मी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। जोग जनम की साड़ी देकर दुपट्टा डालकर विधिवत लक्ष्मी को हिजड़ा समुदाय का सदस्य बना लिया गया। लता ने कहा— तुम जैसे रहती हो वैसे ही रहो, तुम्हारे ऊपर कपड़ों का कोई बंधन नहीं। हिजड़ा समुदाय ने अपने सिद्धांत को लक्ष्मी के लिए लचीला रखा। लता के प्यार और प्रेरणा ने लक्ष्मी की रूहानी ताकत को मज़बूत किया।

इस समुदाय में जब तक गुरु ज़िंदा रहता है, तब तक चेले सुहागन माने जाते हैं। गुरु की मृत्यु के पश्चात चालीस दिन का वैधव्य पालना होता है, सफेद कपड़े पहनना ज़रूरी है। हिजड़ा समुदाय में 'टू व्हीलर' चलाना मना है। लेकिन लक्ष्मी चलाती है। 'जोग जनम' की साड़ी ओढ़कर 'लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी उर्फ राजू' उस अंग समेत जिसे लेकर पुरुष प्रधान समाज अहंकार में डूबा रहता है हिजड़ा समुदाय में शामिल हो गया। सदमा लिंग व लिंगविहीन दोनों समुदायों में था। पर लक्ष्मी के माथे से तनाव की लकीरें मिट गई थीं, लक्ष्मी कहती है, ''मैं मुद्दत बाद ऐसी गहरी नींद में सोई जिससे रश्क किया जा सके। मैं इसी दिशा में अपनी पहचान और अपनी हैसियत बनाऊंगी। वही किया, फिर भी कभी-कभी तड़प भरी उदासी भीतर भरती है। मुझे लगता है जीवन की लय तो हाथ लगती नहीं, बस नाटक किए जाओ जीने का।'' लक्ष्मी खूब पढ़ती है। खूब सोचती है। वह खुद चिंतन की एक धार है। धीरे-धीरे बोलने लगी— "जो लोग मुझे चिढ़ाते थे, वे ही लोग मेरे शरीर को भोगने की इच्छा रखते थे। पुरुष को किसी भी चीज़ में यदि स्त्रीत्व का आभास मात्र हो जाए, वह उसे अपने कदमों में लाने के लिए पूरी ताकत लगा देता है।"

लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी अब एक नई दुनिया का बाशिंदा था। घर का बड़ा बेटा, कॉलेज का होनहार छात्र,मॉडल कोऑर्डिनेटर, अपनी नई दुनिया में कमर में साड़ी बांध चुका था। नृत्यांगना तो थी ही। लक्ष्मी बार डांसर बन गई। इसका पता न कॉलेज में था न घर में। इस समय वह दाई वेलफेअर संस्था की पीआर एज्युकेटर थी। लक्ष्मी का मानना था कि यह संस्था बहुत अच्छा काम कर रही है। वह पीआर एज्युकेटर दाई वेलफेअर की अध्यक्षा बनी। हिजड़ों की यह संस्था उनके मूलभूत अधिकारों और उनके प्रति होने

वाले अन्यायों के प्रतिकार के लिए अपनी पूरी शक्ति के साथ खड़ी हो गई।

लक्ष्मी की पहचान एक सोशल एक्टिविस्ट के रूप में बनने लगी थी। वह अपने कामों के प्रति समर्पित कार्यकर्ता थी। समाज में उसकी छवि और पहचान, हिजड़े की हो चुकी भी। लेकिन घर में अब तक कुछ पता नहीं था। घर में पता चला। सरयूपारी ब्राह्मण का ज्येष्ठ पुत्र हिजड़ा हो गया। न जाना, न सुना, न देखा, कुदरत का ऐसा खेल।

लक्ष्मी के लिए नाजुक क्षण था। पूरी दुनिया उससे छिनने वाली थी। सारे रिश्तेदारों का दबाव 'तोड़ो रिश्ता लक्ष्मी से' मां-बाप पर लाठी बनकर बरस रहा था।

एक अंतराल के बाद लक्ष्मी की पारिवारिक दशा सामान्य हुई। मां-बाप ने जाति-समाज की अपेक्षा लक्ष्मी को महत्व दिया। यही लक्ष्मी का सबसे बड़ा संबल था। परिवार के लिए वह राजू था। छोटे भाई-बहनों की तकलीफें दूर करता, मां-पिता का खयाल रखता। एक डेवलपमेंट प्रोग्राम का अपना प्रपोजल प्रजेंट करने के लिए 'दाई' को भी निमंत्रित किया गया। लक्ष्मी ने वहां पहुंचकर देखा कि वहां उसके 'बार' का एक ग्राहक भी पहुंचा हुआ था जो लक्ष्मी को वहां देखकर हैरान हुआ। दोनों ने एक-दूसरे को अनदेखा किया। जब उसने लक्ष्मी का धाराप्रवाह अंग्रेज़ी में प्रजेंटेशन देखा तो सकते में आ गया। इधर लक्ष्मी ने तय किया कि आज से, अभी से 'बार में नाचना बंद।' लक्ष्मी को अब हिजड़ों के प्रतिनिधित्व हेतु विदेशों में कॉन्फ्रेंस इत्यादि में बुलाया जाने लगा। 'एक्स डाई इंडिया फेस्टिवल' में भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए लक्ष्मी पहली बार यूरोप गई। वहां इतना सम्मान मिला कि उसकी याद से अब भी लक्ष्मी गर्व से भर उठती है। उसकी कला, उसके लोकनृत्य पर वहां के लोग मुग्ध थे। दूसरों के (हिजड़ों) मूलभूत अधिकारों के लिए लड़ने वाले कटिबद्ध इस योद्धा के प्रति प्रेम विश्व स्तर पर संचरण होने लगा। लक्ष्मी ने 'एड्स कंट्रोल सोसायटी' के माध्यम से सेक्स वर्करों के लिए काम करना शुरू किया।

लक्ष्मी को उ.प्र. का एक विशिष्ट पुरस्कार मिला। लक्ष्मी कहती है, "जानती हो अब तक यह पुरस्कार केवल पुरुषों को मिला है, एक मैं किन्नर, इन्होंने किसी भी 'स्त्री' को इस लायक नहीं समझा।" भेदभाव की बात करते हुए लक्ष्मी बेहद व्यथित होती है। घायल हिजड़ों, बीमार हिजड़ों के साथ हॉस्पिटल में भेदभाव किया जाता है। पुलिस चौकी में उनके साथ हुई दुर्घटना को दर्ज तक नहीं किया जाता। स्वयं लक्ष्मी के साथ दो बार बलात्कार करने की कोशिश की गई। 'थाने' ज़िले में अब भेदभाव खत्म हुआ। लक्ष्मी की वजह से। लक्ष्मी एक बार की घटना बताती है— "मैं मुंबई से पुणे जा रही थी, एक्सप्रेस हाइवे (पुणे के नज़दीक) पर एक गाय का एक्सीडेंट हो गया। कोई उस तरफ ध्यान नहीं दे रहा था गाय की हालत देखकर कलेजा मुंह को आ गया। मैं गाड़ी से उतर पड़ी। उन गाड़ियों की लंबी कतार में एक विधायक की गाड़ी भी थी। मुझे लगा ये लोग गाय को इधर-उधर सरकाकर भागने की फिराक में हैं। फिर मैंने भी दिखाया हिजड़पन। पकड़ा विधायक को कहा, जब तक यहां एम्बुलेंस नहीं आएगी, इसे हॉस्पिटल नहीं भेजा जाएगा, एक भी गाड़ी यहां से निकलने नहीं दूंगी समझे?"

लक्ष्मी के भीतर प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति के लिए छटपटाहट है। वह कहती है कि हिजड़ा, देवदासी, जोगता, आदिवासी के विकास के लिए अलग से पंचवर्षीय योजनाएं बननी चाहिए। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार इसे अहम त्रिसूत्री कार्यक्रम बनाया जाना चाहिए और कठोरता से कार्यान्वयन होना चाहिए।

अपने एक इंटरव्यू में लक्ष्मी ने प्रतिप्रश्न किया— "मनुष्यता के तकाज़े पर आप हमें अपने समाज में शामिल क्यों नहीं करते?" जवाब मिला— "अनप्रोडेक्टिव हो इसलिए।" लक्ष्मी ने कहा— "अच्छा, समाज में कितनी स्त्रियां बांझ, कितने पुरुष नपुंसक होते हैं, उनका आप क्या करते हो? हिजड़ों के पास बुद्धि नहीं होती? उनके पास प्रतिभा नहीं होती? बल नहीं होता? वह राजनीति में नहीं जा सकते? फौज में नहीं जा सकते? इन बातों को किन तर्कों के आधार पर तय किया? आपने कलाकारों, प्रतिभावानों को मजबूर कर दिया पचास-पचास रुपए में देह बेचने को, ताली बजाने को। आप अपनी मानवता पर गर्वित भी होते हैं।" वातावरण बोझिल हो उठा है। सारे चुप।

क्या चाहती हो तुम लक्ष्मी? "बस इतना ही कि कल को किन्नरों को देखकर किसी की भवें न तनें। मुख्य समाज और इस समाज के बीच का रिश्ता भय का न हो। कुछ बहुरूपियों को ही हिजड़ा समाज का सच न माना जाए।"

साभारः हंस-अंक दिसम्बर 2010

लेख

देवी-स्त्री यौनिकता

अनामिका

यौनिकता सर्जनात्मकता का उत्स है और उसका उत्सव भी। स्त्रियों की यौन-तंत्रियां सारे शरीर में बिखरी होती हैं, पुरुषों की एकाग्र। इसका अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता कि स्त्रियां अधिक यौनकातर/यौनलोलुप/यौनसंवेदी होती हैं। इसका अर्थ यह भी नहीं लगाया जा सकता कि उनकी यौनिकता बिखरी हुई व कमतर होती है। यह एक प्राकृतिक संयोग है और किसी भी प्राकृतिक संयोग पर इठलाना या लजाना कहीं से भी युक्तिसंगत नहीं होता। पर यह स्त्री जीवन का एक बड़ा सत्य है कि स्त्रियों को यौन संतुष्टि ऐसे ही साथी से मिल सकती है जिसका उनसे गहरा मानसिक और बौद्धिक जुड़ाव हो चुका हो और जो मन-वचन-कर्म से सभ्य और शिष्ट हो। मां-बाप की तय की हुई शादियां वैदिक समागम को अंतरंगता का माध्यम मानती हैं। कभी-कभी यह तुक्का चल भी जाता है— हज़ार में से ऐसा भी हो सकता है जहां देह की वीणा ही ऐसी कुशलता से छेड़ी गई कि आलाप से तान तक एक पूरा 'खयाल' बन गया। लेकिन हज़ार में एक भी संख्या बड़ी तो नहीं है, ज़्यादातर तो 'गरजत-बरसत सावन आयो रे' का आक्रमणकारी दृश्य ऐसी भाव शून्यता के साथ हड़बड़-धड़बड़ में मंचित होता है कि स्त्री के स्नायु-तंत्र खुल ही नहीं पाते और पुरुष के खर्राटे गूंजने लगते हैं। दिन भर गाली-गलौज रात को खर्राटा—ज़्यादातर स्त्रियों के यौन-जीवन का हासिल यही है।

देव-देवियों की जो निर्मितियां हैं वहां यौन-जीवन तृप्त है। शायद इसलिए भी कि प्रायः वहां 'पहल' स्त्रियों/देवियों की तरफ से ही हुई है। शंकर सेलिब्रेटी हैं, देवादिदेव, पार्वती को उनका यश और बमभोलापन आकर्षित करता है। वे वन में तपस्या करती हैं और उनका ध्यान अपनी

ओर खींचती हैं। 'हड़तालिका व्रत कथा' और कालिदास के 'कुमारसंभव' में पार्वती की यौनिकता का बेहद सुकुमार और सजीव चित्रण हुआ है। लोक कथाओं में भी शिव-पार्वती के सरस और परम विटी संवाद देखने में आते है।

'राधा' और गोपियों की जटिल और गम्भीर यौनिकता के अत्यन्त प्रखर चित्र विद्यापति, सूरदास आदि में मिलते हैं। एक प्रसंग में मैले वस्त्र पहने राधा चटाई पर एक ओर मुंह फेरे लेटी हुई है। सखियों के कहने पर भी वह साड़ी नहीं बदलती। विद्यापति कहते हैं— *हरिश्रम जल भींजत उरअंचल, एहि मारत व धुआवति सारी* (यह साड़ी मैं कैसे धो दूं या बदल भी कैसे लूं, कृष्ण ने मेरे साथ समागम किया था, यौनश्रम से जो पसीना टपका था, उससे मेरा आंचल भीगा था। कृष्ण का पसीना जिस आंचल में सूखा है, वह साड़ी धोने की धृष्टता मैं नहीं करने वाली)।

प्रेम का ऐसा वर्णन जहां शास्त्रों में हुआ हो— वह भी आदर्श स्त्री-चरित्रों के माध्यम से, उस समाज में भी क्रूर, वहशी, लोभी पति के प्रति भी समर्पण की उम्मीद स्त्रियों के लिए की गई और पति के अलावा किसी से भी हंसने-बोलने का रिश्ता रखने वाली स्त्री कुलटा कहलाई। आदर्श स्थिति तो पति-पत्नी दोनों के लिए एक-निष्ठता ही है क्योंकि इससे रिश्ते में बिखराव नहीं आता। किसी को 'अनचाहा' 'उपेक्षित' होने की दुर्गति नहीं झेलनी पड़ती। पर कभी किसी बौद्धिक-मानसिक या शारीरिक खता के चलते कहीं और भी सखा-भाव स्थापित हो जाना असम्भव नहीं है। ऐसे में सौत से जैसे स्त्रियां समंजन का रिश्ता रख लेती थीं, पुरुष भी सह-पति या सह-सखा का रिश्ता रख सकते हैं। इसका एक उदाहरण पांचाली के पांच पति-पाण्डव हैं। महाभारत में

तो खैर प्रायः सारी स्त्रियां निष्ठता के आदर्श का बहिष्कार करती हैं। स्वतंत्रता की एक अजीब संकल्पना नियोग विधि से पुत्र प्राप्त करने की इच्छा और स्वयंवर में मनचीते पुरुष के चयन में दिखती हैं। सत्यवती, अम्बा-अम्बालिका-कुन्ती से लेकर द्रौपदी तक यौनेच्छा के विनियोग में पूर्णतः स्वतंत्र तो नहीं हैं— वर्ग-वर्ण के घेरे में बंधी हुई हैं। पिता द्वारा चुने वरों में ही एक को चुनती है या फिर देवताओं में एक— सूर्य को।

तुलसीदास ने 'पुष्प वाटिका प्रसंग' में 'नूपुर-किंकिणि-ध्वनि' तक सीता की शर्मीली यौनिकता की रूनझुन दिखाई है। स्वयंवर के समय में भी वे थोड़ी बेचैन होती हैं कि धुनष न उठा तो क्या होगा। बाकी उनकी मधुर रूमानियत का विस्तार जंगलों में साथ जाने या स्वर्ग-मृग के लिए मचलने में दिखाई देता है। एक बात ध्यान देने की यह है कि सांद्र यौन-चेतना के बावजूद उच्छृंखन यौनिकता की शिकार देवियां भी नहीं हैं। 'जो मिल गया उसी को मुकद्दर समझ लिया' का भाव उनमें नहीं है तो 'जो भी प्यार से मिला, हम उसी के हो लिए' वाली डांवाडोल यौनिकता भी किसी में नहीं दिखती।

करुणा या भय या मात्र संकोच के वश में वे आत्मसमर्पण नहीं करतीं। लालच या फायदे से परिचालित होने का भी प्रश्न नहीं उठता। क्योंकि वे अपनी यौनिकता को, अपने चयन को, अपनी देह, अपनी रूचि को महत्व देती है। वैसे भी जिसे धैर्यवान, कोमल, मनमोहना नायक मिला है— वे उदंड की ओर कैसे आकर्षित होंगी? स्वाभाविक है कि सीता रावण की ओर आकर्षित नहीं होगी। ज़्यादा महत्वपूर्ण बात यह कि रावण से ब्याही मंदोदरी के पास यदि राम आते तो उसका मन विचलित होता कि नहीं?

हमारे समाज की मुश्किल यह है कि यह ऐसे उद्धत पुरुषों का समाज है जो रावण की तरह धीर-गम्भीर भी नहीं। काम-क्रोध-लोभ से भरे पुरुषों से प्रेम कर पाना किसी उन्नत चेतना सम्पन्न स्त्री की यौनिकता के लिए एक कठिन चुनौती है। ज़िद्दी या अविकसित बच्चा समझकर पुरुष से सद्भाव बनाए रखने की कोशिश की जा सकती है, पर प्रखर प्रेम कर पाना किसी भी स्त्री के लिए असम्भव ही जानिए। हरहर-पटपट से अब तक भी कई दफा स्त्री शरीर दूसरे स्त्री शरीर में सुख के झरने ढूंढने लगता है।

बहुतेरे पुरुषों को स्त्री यौनिकता की समझ होती भी नहीं— न वे आदरपूर्वक मीठी, उड़ान भरी बातें कर पाते हैं न काव्य-संगीत-नृत्यादि की समझ ही (शिव या कृष्ण की तरह) उन्हें होती है— 'भाव न जाने पेट भरे से काम' वाली यांत्रिकता झेल पाना किसी भी संवेदनशील स्त्री शरीर के लिए जीती मक्खी निगल जाने जैसा ही होता है। आंख-नाक-कान मूंदकर वे किसी तरह तीन मिनट की रगड़घस सह जाती हैं। फिर बाथरूम में जाकर उल्टी कर देना 'फ़ेकिंग' के बाद की थकान लम्बे, अश्रुविह्वल स्नान में धोना, कहीं किसी गाने या और किसी काम में मन बहला लेना स्त्री जीवन के आम अनुभव है। आर्थिक निर्भरता बच्चों की चिंता, बूढ़े मां-बाप के बिखरने का भय आदि संदर्भ उनकी यौनिकता का दमन करते चलते हैं।

कृष्ण और शिव में आदर्श प्रेमी के सारे लक्षण तो हैं ही। कालिदास के 'रघुवंशम' के राम में सजग प्रेमी के लक्षण भी हैं जिससे सीता की यौनिकता स्पन्दित होती है। लंका से लौटते हुए राम सीता को जंगल-समुद्रादि दिखाते हैं कि देखो, वहां जंगल में मुझे तुम्हारा नूपुर मिला था। उससे मैंने तुम्हारा पता कितनी बेचैनी से पूछा और देखो वह समुद्र जहां नदियां सागर को स्वयं अपना मुख अर्पित करती हैं। लेकिन सागर भी दान नहीं लेता, अनन्त लहरों, में यह अर्पण लौटाता है।

शिव एक आदर्श प्रेमी इसलिए भी है कि वे अत्यन्त सरस कहानियां सुनाते हैं, सृष्टि का रहस्य समझाते हैं। उपेदश सुनते भी है, रूठी हुई प्रिया को मनुहार से मना लेते हैं और प्रिया के वियोग में उन्मत्त होकर (उनका शव कंधे पर लिए-दिए) सारी कायनात में अपने प्रेम की डुगडुगी बजा देने का महानाट्य भी रचते हैं।

दस महाविद्याएं शिव के दस अलग-अलग रूपों से अनुरक्त हैं— काली महाकाल से, ललिता कामेश्वर से, बगला मृत्युञ्जय से ...। विपरीत रति की बहुतेरी तांत्रिक मुद्राएं इस रूपक का विस्तार करती हैं कि शक्ति के संचार के बिना शिव भी शव है। पुरुष के व्यक्तित्व के दस आयाम, शिव में दस रूपों में स्त्री व्यक्तित्व के दस पक्ष दस महाविद्याओं में बसी है। कहने का अर्थ यह है कि खिलने के लिए स्त्री-पुरुष दोनों का व्यक्तित्व बहुआयामी और एक-दूसरे को मीठी चुनौती दिए रखने वाली सरस पारस्परिकता से युक्त होना चाहिए ताकि 'तुमसे न सहज मन ऊब जाए।'

दरअसल उसे समझना खुद को समझना है

पवन करण

हम दोनों के अलावा उस कमरे में कोई और न था
हम दोनों एक–दूसरे के सामने बैठे थे
और चुरा रहे थे एक–दूसरे से नज़रें
हमारे बीच उभर आया विषय हमें एक–दूसरे के आगे
झेंपने के लिए कर रहा था विवश।
मैंने उससे कहा, आखिर तुम इस बात को क्यों जानना चाहते हो
कि इस बारे में मुझे कहां से पता चला?
किसी को कुछ पता नहीं, तो मैं कहूंगा
एक बार फिर गलती पर हो तुम मेरे अलावा कुछ लोग
और भी हैं जो अच्छी तरह जानते हैं इस बारे में।
तुम्हारी बात मान ली, कि तुमने, कोई कसर नहीं की
उसे प्यार करने में, कई लड़कियों के बीच से चुनकर लाए तुम उसे
और सब भाग–दौड़ भी तुम उसी के लिए करते हो।
तुम्हारे और उसके बीच सब अच्छा–अच्छा है
फिर उसे क्या सूझी यह सब करने की,
इस मामले में तो यही कहा जा सकता है
सब कुछ अच्छा होने का मतलब
सब कुछ मन का नहीं हो जाता।
इच्छाओं की चिड़िया भी भीतर चहचहाती है
इच्छाओं की तितलियों के पीछे भागने में
हम खुद क्या किसी से कम हैं, इस मामले में।
हमें एक–दूसरे से बेहतर कौन जानता होगा
क्या हम अब भी उनके कोमल परों से खेलने से चूक जाते हैं।
अपनी पसन्द के चयन और संग के बावजूद
क्या अब भी हमारे हाथ पैर नहीं फड़कते
तुम भले ही उसे गलत कहो मुझे तो नहीं लगता
तुम्हारी पत्नी ने कोई गलती की है
वह भी अपनी इच्छाओं के जल में बहकर
दूर तक जा सकती है।
वह भी सब कुछ अच्छे के बावजूद
अच्छे को एक तरफ उठाकर रखते हुए
अपनी इच्छा को प्राथमिकता दे सकती है।
खुद के सामने खुद ही को कर सकती है खड़ा
लगता है वही उसने किया भी है।
एक बात बताओ, जीवन के सबसे रंगीन इस रास्ते पर
जिस पर एक स्त्री का भी उतना ही हक
जितना कि हमारा, चलते हुए हम
यह जानने की कोशिश क्यों नहीं करते–
एक स्त्री आखिर कैसा पुरुष चाहती है?
वह एक ही पुरुष में पति और प्रेमी दोनों चाहती है
या वह पति और प्रेमी दो अलग–अलग पुरुष चाहती है?
वे शादी शुदा स्त्रियां जो होटलों के कमरों
दफ्तर के बाथरूमों और मित्रों के फ्लैटों में मिलती हैं हमसे
क्या वे हमारी पत्नियों जैसी स्त्रियां नहीं?
क्या उनके पति और हम प्रेमी अलग–अलग पुरुष नहीं?
वे जब मिलने आती हैं हमसे उस वक्त वे हमें और हम उन्हें
किस कदर पसन्द करते हैं, बुरी तरह टूट पड़ते हैं एक–दूसरे पर
जबकि उनके और हमारे पास सब कुछ अच्छा–अच्छा है।
दरअसल उसे समझना खुद को समझना है।
इस बात का कोई अर्थ नहीं कि तुम्हीं
इसके शिकार क्यों हुए, मैं तुम्हीं से पूछता हूं
तुम्हें ही इस सब का शिकार क्यों नहीं होना चाहिए था?
भले ही तुमने उसे रंगे हाथों पकड़ा हो, भले ही वह
तुम्हारे पीठ फेरते ही किसी की आंखों में
रंगों की तरह बिखरती रही हो, खिलती रही हो
किसी के पहलू में चमकीले तारे की तरह।
उसे समझने के लिए उसका यह जबाब ही काफी है
मैं नहीं जानती मैंने यह सब क्यों किया
ना ही तो मैं तुमसे ईर्ष्या करती हूं
ना ही तुम मुझे नापसन्द हो
यह भी सच है कि सबसे पहले मैं तुम्हें ही प्यार करती हूं।
सबसे पहले मैं तुम्हारे ही प्रति ज़िम्मेवार हूं
और ये बात तो मैं उससे भी कहती आई हूं
मैं भले ही अपने आपको तुम्हें खुशी–खुशी सौंप देती हूं
लेकिन जहां तक उनका सवाल है
मुझ पर पहला हक़ तो उन्हीं का है।

पुस्तक परिचय

पुस्तक किनारों पर उगती पहचानः फर्क़ों की राजनीति के नए नारीवादी आयाम
सम्पादन आभा भैया
प्रकाशन राजकमल
भाषा हिन्दी
पृष्ठ 207

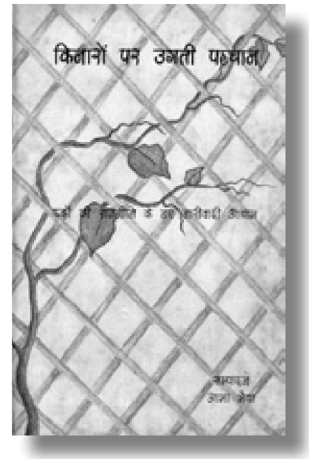

पहली बूंदों का बरसना-कच्ची मिट्टी का महकना

एकल औरत व यौनिकता

"**एकल औरत** – कहां से शुरू करें। बहुत सारे कागज़ों में 'एकल औरत' का नाम ढूंढा, लेखों को परखा। कभी वह नारी आन्दोलन के मंच पर 'परित्यक्ता' की भीड़ में नज़र आती है। कभी नारी शोध के दायरों में वो 'तलाकशुदा' के सर्वे का निचोड़ बनकर सामने आती और कभी कल्याणकारी पहलकदमियों में 'पतिता उद्धार समिति' की अगुवाई करने वाली 'वेश्या' के नाम से अख़बारों में छपती है। जैसे-जैसे उनकी कही-अनकही सुनने लगे तो उनके सपनों, संघर्षों उमंगों, दुखों और साहस के अक्स हमें नज़र आने लगे। तब साफ समझ आया कि हममें से कई औरतें- 'बेचारी' और 'रंडी', 'देवी' और 'दासी' से दूर खड़ी साधारण औरतें- बहुत असाधारण ज़िन्दगी जी रही थीं।

'शादी' की ज़रूरतों को नकारने का मतलब यह नहीं कि एकल औरतों की अपनी इच्छाएं, अपनी यौनिक उमंग, आकर्षण और किसी के करीब होने के सपने नहीं होते। बसन्ती ने अपनी जवानी में से अन्दर-ही अन्दर बहुत महसूस किया। जब ठेकेदार के हाथ पीछे से उसके कन्धों को छूते हैं, तो ठहर जाता है उसका दिल और महसूस कर लेता है, एक सुकून। ढूंढ ही लेते हैं वे दोनों वक्त मन्दिर तक जाने का और वादा कर लेते हैं देवी के सामने, "जिस दिन भी कोई एक दूसरे को दुख देगा, रिश्ता तोड़ लेंगे।" बसन्ती की अथक इच्छा है कि कोई उसके जीवन का बोझ बांट ले। उसका तन और मन दोनों ढूंढते रहे हैं इस आग को बुझाने वाला नीर और कभी उसका घूंट पीकर तो कभी उस कुएं की मुंडेर से अन्दर झांककर लौट आते हैं, उसके पांव। कभी समाज में जगह खोने के डर से वह अपनी ज़रूरतों को नकार कर अपने लिए घुटन खरीद लेती है और कभी छिपकर जी लेती है अमृत के क्षण, सिनेमा हाल के अंधेरे में, बनती इमारतों के चढ़ाव और उतराव में, हांफती सांसों में बोझ से कांपते हाथों के तनाव में। कुछ मिलने के बावजूद कितना बड़ा हिस्सा इन आकांक्षाओं का दब जाता है बिल्डिंगों के मलबे में, ज़िन्दगी की दौड़धूप की थकान के मरघट में। दरअसल न मन के अंधेरे में, न समाज के चौंधिया देने वाले उजाले में जगह पाती है इन रिश्तों को पनपने की, फैलने की।

पन्नी अपनी ज़िन्दगी को इतना खुला जीती है कि वह समाज की मनाहियों की परवाह किए बगैर मन का आंगन रिश्ते के गोबर से लीप लेती है और लगा लेती है अपनी प्रेम-बेल, छिपकर नहीं, खुली हवा में। उसके मन में कुंठा नहीं एक गर्व है अपने मन से किए इस रिश्ते पर।

“आदमी को छोड़ने के बाद एक मुसलमान दोस्त से प्यार हो गया। हालातों से तो उम्र भर लड़ना है मुझे, पर अपनी इच्छा से कैसे बैर?” पर जब इस रिश्ते की हिंसा और कुंठा को भुगतती है तो अन्दर तक मुरझा जाती है। अपने बालों को गुंथते हुए कहती है, “कभी छिपता था इन्हीं बालों में, अब इन्हें ही पकड़कर खींचता है।” पर, फिर भी अपनी यौनिक पहचान को दबाती नहीं, छिपाती नहीं।

पन्नी की तरह परमेश्वरी भी अपना रिश्ता खुले आम जीती है। दोनों उम्र में कम और जवान हैं। और दोनों ही किसी हद तक स्वतन्त्र। इसलिए परमेश्वरी अपने प्रेम को और प्रेमी की मुसलमान पहचान को न अपने परिवार से छिपाती है, न अपने पास पड़ोस से। हां, दोनों के मन में यह कड़वाहट गहरी है कि उनके प्रेमियों ने झूठ बोला कि वे ग़ैर शादीशुदा हैं।

इन सभी जीवनियों में यह सामने आया है कि ग़रीब ‘एकल औरतों’ के रिश्ते होते भी हैं तो उन्हीं मर्दों से जो शादीशुदा हैं। और इनमें से प्रायः सभी समाज के उन तत्वों से जुड़े हैं जिन्हें असामाजिक माना जाता है। परमेश्वरी के प्रेमी का पुलिस लगातार पीछा करती है। बसन्ती का प्रेमी ही उसकी बेटी गायब करके बेच देता है। पन्नी का प्रेमी शराब में धुत्त पन्नी को मारने से नहीं चूकता।

अपनी मर्ज़ी से बनाए इन रिश्तों में भी इनके साथ खूब मनमानी होती है, उनके श्रम और शरीर दोनों का शोषण होता है। पन्नी पांच बार गर्भपात करा चुकी है। परमेश्वरी हर संम्भोग के दर्द को चुपचाप झेल जाती है या उससे बचने की नाकाम कोशिश करती है। पर ये औरतें भी खुलकर अपनी यौनिक इच्छा की न बात कर पाती हैं और न ही पूर्ति। पर कोशिश ज़रूर करती हैं, समाज के आगे इस सच का आईना धरने की कि “मर्द के मरने या छूटने से औरत की यौन इच्छाएं नहीं मरतीं।

नफ़ीसा का धीरे से कहना “कोई शरीर छूता है तो अजीब-सी बेचैनी हो जाती है। आजकल एक लड़का चिट्ठियां लिख रहा है। कहता है प्यार करता है। एक ओर डर लगता है बदनामी न हो जाए। दूसरी ओर मन में आता है कि कोई है चाहने वाला जिसे मेरा हंसना, बोलना अच्छा लगता है।” नफ़ीसा अभी बहुत जवान है। परिवार के साथ रहने की अपनी बन्दिशें हैं।

भंवरी का अनुभव कुछ अन्य मनाहियों के दायरे को भी तोड़ता है जब वह बुखार में अपने बेटे के पास सोते हुए अचानक अपने शरीर में कसमसाहट महसूस करती है और बेटे को अलग कर देती है। और चम्पा जिसने अपने तन की ज़रूरतों की चोली को अपनी “मां की पहचान” के दामन के नीचे छिपा लिया है, कहती है, “कभी मेरे बदन में भी कुछ-कुछ होने लगता है तब देर तक नींद नहीं आती।” पर अलग-अलग तरह से सभी जीवनियां इन दबी-छिपी इच्छाओं की बातें कहती हैं।

इस दौरान औरतें खुद अपनी और दूसरी औरतों की ‘इच्छा’ छवियों से लड़ती रहती हैं। ‘अच्छी पत्नी’ और ‘बुरी वेश्या’ इन दोनों पहचानों की लड़ाई की सामान्य धरती को हम स्वीकारने से बहुत डरते हैं। आर्थिक स्वतंत्रता यौनिकता को खुद संचालित करने की स्वतन्त्रता और यौनिक अत्याचारों से बचाव, ऐसे कई मुद्दे दोनों की ज़िन्दगियों के लिए संघर्ष के मुद्दे हैं।

इन जीवनियों में बातें सिर्फ़ मर्द और औरत के रिश्ते तक नहीं रुकीं। औरत को औरत का सहारा कब मन का होता है और कब तन का, यह कौन कहे और कैसे? इस सच को हाथों में पकड़ाया भंवरी ने जो इन जीवनियों की उम्र में सबसे आगे थी। अपनी दो सहेलियों के नाम उसकी बाजू पर गोदे हुए थे जिन्हें दिखाकर एक सरल सी बात कह गई भंवरी, “चमड़ी सिकुड़ जाए पर सहेलियन की याद नहीं सिकुड़े।” पर जिस सच ने हमें चौंकाया वह था उसका अपनी सौत से रिश्ता। “बाहर सुखराम (पति) का नाम तो धीरे-धीरे मिट गया पर अन्दर-ही-अन्दर इन दो औरतों की दोस्ती पनपने लगी। वो एक दूसरे की पीठ मलतीं, दुलार से एक दूसरे की देह को देखतीं और दिखातीं और छुतीं-छुआतीं तन एक दूसरे का। भंवरी सहज शब्दों में सुना जाती कि

“कैसे दोनों एक दूसरे के पांवों पर पांव धर और छाती से छाती लगाकर साथ सोतीं।” हमें इस अहसास को नाम देने की ज़रूरत भंवरी ने कभी महसूस न होने दी। उसे जाने कहां से पता था “वो बसन्त जो दो औरतों के बीच में ही खिलता है।”

भंवरी ने अपना एक अनुभव सुनाया एक बार- “बामनी (ब्राह्मणी) सहेली घर-परिवार के बाहर खेतन में मिलती थी अपनी सहेली से। बहुत प्यार करती थी वो। एक-दूजी को देखे बैगर रह नहीं सकती थीं। दुनिया भले ही पहनने-खाने न दे पर इस शौक पर जोर नहीं चलता।” हर जाति, गांव की गरीबी-अमीरी में पलते इन रिश्तों को जब भंवरी हमसे बांटती, तो यह साफ़ था कि वो वही सुना रही थी जो उसने अपने शरीर से जाना था और मन की आंखों से पहचाना था। साठ-सत्तर साल की भंवरी के लिए ये रिश्ते और उनकी बातचीत उतनी ही सहज थी जितना यह बताना कि वो अपनी बहू को अपने बेटे से कैसे बचाती थी। निर्णयात्मक नैतिक बोझ उसने कभी भी महसूस नहीं होने दिया। और हमें सिखाती रही कैसे मन की चादर को फैलाने से औरतों को छांव मिलती है।

सहेलियों के बीच पसरी नफ़ीसा ने भी इस भेद को उजागर किया- “एक हूक-सी उठती है बचपन की सहेली के लिए। पहचान लूंगी उसको जहां भी मिले। मेरे से बड़ी थीं वे दो बहनें। दोनों मुझे गुड़िया बना देतीं और लड़ती थीं मुझे साथ रखने के लिए। बड़ी बहन तो मेरा हाथ पकड़ कर उस जगह रख देती। कुरकुरा लगता था। बाल हाथ में आ जाते थे। मकान मालिक के बेटे ने बाद में उसकी इज़्ज़त लूटी और बेच आया उसे कोठे में। आदमी तो है ही ऐसी चीज़, उसे तो सूंघना ही गुनाह। औरत, औरत के साथ आज़ादी से रह सकती है। औरत, औरत को समझती है पर मर्द के बीच में आने से गड़बड़ हो जाती है।”

तभी रोशनी (जो शादीशुदा है) ने कहा, “मर्द के होते हुए भी औरतें आपस में प्यार करने लग जाती है। मैं जानती हूं बस्ती की उन दो औरतों में ऐसा ही प्यार है दीन-दुनिया भुला बैठी हैं।” इस पर निर्मला कह उठी, “पर आदमी तो रिश्ता छोड़, दो सहेलियों के साथ से डरता है। नफ़ीसा और मेरी दोस्ती को लेकर सब ऐतराज़ करते थे। पहले बाप ने हाथ तोड़े अब पति रोकता है। कमरे में बन्द करके मारा, पर मैंने कहा मैं अपनी सहेली नहीं छोडूंगी।”

इस एक्शन रिसर्च की धरती पर जब हमने कदम रखा था तो समाज के दो पूर्वाग्रहों को टटोलने की वचनबद्धता थी, एक तो समाज का यह नज़रिया कि ‘एकल औरतें’ यौन इच्छाओं से परे हो जाती हैं- यानी कि वे गैर यौनिक हो जाती हैं, पति के साथ-साथ उनकी इच्छाएं भी मर जाती हैं, दब जाती हैं। और दूसरा यह कि वे अपने यौनिक संबंधों, इच्छाओं आकर्षणों के बारे में खुलकर बात नहीं करेंगी। यही नहीं, अगर ‘एकल औरतों’ के साथ अकेले या सामूहिक स्तर पर इस तरह की बातें हुईं तो समाज का और खासतौर से औरतों का बहुत विरोध होगा। हमने देखा कि ये दोनों पूर्वाग्रह हमारे भ्रम थे या हमारे मध्यमवर्गीय डर। दरअसल वे हमारे नैतिक मूल्यों और आग्रहों की छवि थे। सिर्फ़ बात ही नहीं, रात की मीटिंगों में, वर्कशाप के अपनेपन में, नाच-गानों के दौरान, यौनिकता के अलग-अलग पहलू हमारे सामने आए- सिर्फ बात में नहीं, हाव-भाव में, आपसी छेड़छाड़ में, गाने के सुरों में और नर्मी से एक दूसरे को छूने के क्षणों में। जागे मुक्त मन की महक हमें आपस में लगातार बांधती रही।

औरतों की ये खुसुर-पुसुर उनकी शोर से पुरज़ोर ज़िन्दगियों के बीच दब भले ही जाए पर ख़ामोश नहीं होती। उनके लिए यह कहना, सुनना और देखना न अतिवादी न अलगाववादी। ज़िन्दगी की इतनी बहती धाराओं में से इस मन्द बहती धार के छीटों का सुख भी उतना ही भिगों देने वाला है जितना और सब कुछ। यह उन्होंने खुद जान भी लिया और हमें सिखा भी दिया। ”

पुस्तक के कुछ अंश।

फ़िल्म समीक्षा

यौनिकता पर काम के दौरान हमने निम्न फ़िल्में बहुत उपयोगी पाई हैं।
इस फ़िल्मों की प्रति अर्जित करने के लिए आप जागोरी से मदद ले सकते हैं।

अनटोनियोज़ लाईन (1995)

निर्देशनः मारलीन गोरिस, **अवधिः** 102 मिनट

यह फ़िल्म पांच पीढ़ी की महिलाओं के सशक्त चित्रण के माध्यम से समुदाय में यौनिकता व बहुवादी पहचान विकलांगता, धर्म, पित्तसत्तात्मक दमन तथा यौन हिंसा पर औरतों के पक्ष को प्रस्तुत करती है।

हू कैन स्पीक ऑफ़ मैन (2003)

निर्देशनः अम्बरीन अल कदार, **अवधिः** 32 मिनट

यह वृत्तचित्र तीन मध्यवर्गीय मुस्लिम औरतों– चीनी, अरशिन व काफिला की केस स्टडी प्रस्तुत करती है जो पुरुषों की तरह कपड़े पहनती हैं व औरताना नियमों से विद्रोह करती हैं। इन तीनों केस स्टडी के ज़रिए समाज में मर्द व औरत की मान्य सामाजिक भूमिकाओं पर समझ बनाने की कोशिश की गई है।

बॉयज डोन्ट क्राय (1999)

निर्देशनः पीयर्स किंबरली, **अवधिः** 114 मिनट

यह फ़िल्म एक लड़की टीना ब्रॉनडन की सच्ची कहानी है। टीना एक लड़का बनकर रहती है और उसके पुरुष दोस्त उसके साथ बहुत खुश रहते हैं। उसकी महिला मित्र भी उसे संवेदनशील और स्नेहिल मानती हैं। जब टीना की सच्चाई का खुलासा होता है तब उसके पुरुष दोस्त उसका बलात्कार करते है। टीना के बलात्कार की रिपोर्ट पुलिस भी मानने से इंकार करती है और उसका मज़ाक बनाती है।

गुलाबी आईना (2003)

निर्देशनः श्रीधर रंगायन, **अवधिः** 40 मिनट

यह फ़िल्म बॉलीवुड के नृत्य, संगीत व ड्रामे के माध्यम से एक पश्चिमी 'गे' युवक और दो भारतीय 'ड्रैग क्वीन' के बीच संबंध को दर्शाती है। दोनों पक्ष एक नौजवान युवक को अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं। फ़िल्म भारत के गे समुदाय के आपसी मानवीय रिश्तों व संवेदनशीलता को उजागर करती है।

टेल्ज़ ऑफ़ द नाईट फ़ैरीज़ (2002)

निर्देशनः शोहिनी घोष, **अवधिः** 74 मिनट

इस फ़िल्म में पांच यौन कर्मी- चार महिलाएं व एक पुरुष फ़िल्मकार के साथ अपनी कहानियां बयान करती हैं। कोलकाता शहर की गलियों की पृष्ठभूमि में यह फ़िल्म यौन कर्म को काम का दर्जा देने के विमर्श पर चर्चाओं व सामूहिक संगठनात्मक शक्ति के प्रभाव की बात करती है।

इफ़ दीज़ वॉलज़ कुड टॉक (2000)

निर्देशनः जेन एंडरसन व मार्था कुलिज, **अवधिः** 96 मिनट

यह फ़िल्म 1960, 1970 व 2000 के समकालीन दौर में समलैंगिक मुद्दों का दस्तावेज़ीकरण है। यह समलैंगिक आन्दोलन, रिश्तों व उनकी जटिलताओं के बारे में समझ बनाने का प्रयास करती है।

नवरस (2005)

निर्देशनः संतोष सिवन, **अवधिः** 90 मिनट

तमिलनाडू के कूवागम त्यौहार के दौरान फ़िल्माई गई यह फ़िल्म अरावणी किन्नर समुदाय पर आधारित है। यह त्यौहार अरावणी किन्नरों की मौजूदगी का जश्न मनाने के लिए आयोजित किया जाता है। अरावणी खुद को भगवान कृष्ण का अवतार मानते हैं।

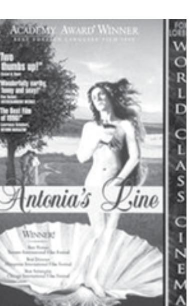

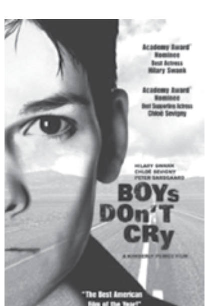

...अन्त में

हमसबला का यह अंक यौन व यौनिकता विशेषांक है। इस अंक में हमने इस विषय पर उपलब्ध विभिन्न विमर्शों, नज़रियों और बहसों को संकलित करके आपके समक्ष प्रस्तुत किया है। उद्देश्य है— यौन और यौनिकता की समझ गहरी करना। साथ ही महिलाओं व पुरुषों की इतरलिंगी, समलैंगिक यौनिकता, बहु-यौनिक पहचानों, विषमलैंगिकता, यौन नियंत्रण, सामान्य व असामान्य यौन, यौन हिंसा आदि व्यापक मुद्दों पर चर्चा की शुरुआत करना। इस अंक के ज़रिए हम उन सांस्कृतिक व सामाजिक व्यवहारों की भी बात करेंगे जो महिलाओं के यौनिक अधिकारों का हनन करते हैं।

यौन व यौनिकता के बीच एक महत्वपूर्ण फ़र्क़ है यौन जैविक और अचल माना जाता है तथा यौन शब्द का उपयोग एक 'क्रिया' या 'व्यवहार' के लिए होता है। यौनिकता एक काल्पनिक सिद्धांत है जिसमें शारीरिक, यौनिक, भावनात्मक व व्यावहारिक पक्ष मौजूद हैं। इसकी रचना उन तमाम तरीकों से होती है जिनसे हमारे अनुभव व जज़्बात व्यक्त होते हैं या जिनसे इस अभिव्यक्ति का नकारा जाता है। इस लिहाज़ से यौनिकता के नकारात्मक व सकारात्मक अर्थ होते हैं और इसकी जड़ें एक विशेष संदर्भ में मौजूद होती है।

यौनिकता की रचना हमारी भावनात्मकता यानी हम कौन व क्या हैं व समाज से हमारे रिश्ते से होती है। ये न सिर्फ़ यौनिक पहचान से जुड़ी है बल्कि इसमें यौनिक मानदण्ड, व्यवहार, बर्ताव, चाहत, अनुभव, यौनिक ज्ञान और कल्पना भी शामिल होती है जो विषमलिंगी व समलैंगिक संबंधों के तहत गढ़ी जाती है। लिहाज़ा यौनिकता का सिद्धांत जैविक व मनोवैज्ञानिक पक्षों के साथ-साथ यौनिक पहचान व व्यवहार के सामाजिक सांस्कृतिक आयामों से भी संबंद्ध है। चूंकि यौनिकता व्यक्तिगत व सामाजिक दोनों पक्षों से जुड़ी है इसमें सामाजिक भूमिकाएं, व्यक्तित्व, जेंडर व विचारों का भी समावेश होता है। यह समाज में मौजूद जेंडर व सत्ता संबंधों को समझने में भी कारगार साबित होती है।

यौन और यौनिकता दोनों के अनेक आयाम होते हैं- संबंधात्मक, मनोरंजन, शारीरिक, भावनात्मक, कामुक व आध्यात्मिक ये आपस में जुड़े होते हैं और इनको अलग नहीं किया जा सकता है। प्रजनन यौन क्रिया का एक पहलू मात्र है।

यौनिकता एक व्यापक तंत्र है जो कल्पना व चाहत को शरीर के साथ जोड़ती है। ये लिंग से परे स्वयं तथा लोगों के बीच में सम्प्रेषण का सबसे अंतरंग संबंध है। यह एक खुशनुमा, स्नेहशील, सृजनात्मक, मदहोश, कामुक व उमंग भरी पारस्परिक क्रिया है।

यौनिक व्यवहार व यौनिक कामना शारीरिक व सामाजिक प्रक्रियाएं हैं जो एक विशेष संदर्भ में परिभाषित की जाती है। हमारा समाज पितृसत्तात्मक है और इस सामाजिक परिप्रेक्ष में विषमलैंगिक व समलैंगिक दोनों संबंधों में असमान सत्ता संबंध देखने को मिलते हैं। इस सामाजिक पृष्ठभूमि में यौनिक शुचिता यानी कौमार्य को औरतों के लिए आवश्यक माना जाता है। वहीं

कहा है किसी ने औरत-
नहीं सिर्फ जिस्म,
एक इन्सान है।
इन्सान है तो हैं कई-
ज़ज्बात भी उसके,
भूख उसकी भी है-
उतनी ही सच्ची,
जो करती है तुम्हें भी बेचैन,
चाहत उसकी भी है,
उतनी ही अनन्त-
जो हौसला दे जाये जीने को,
अपनी हर ख़्वाहिश।
फिर क्यों लाद देते हो?
उसकी इच्छाओं पर-
सही और गलत के दमघोटूं पैमाने?
अनगिनत मर्यादा के प्रश्न?
उसका 'इन्सान' होना ही क्या-
जवाब नहीं तुम्हारे
हर सवाल का?

मन की किवाड़े ज्यों खुलीं-
कि दौड़कर लिपट गया
अकेलापन,
ढोते हुए अपनी ही ख़ामोशी-
लुढ़क गई मैं मौन-
चादरों पर,
टांकने कुछ इच्छाएं,
लगा थाम लूं
उन पलों को-
जो जिये थे कभी 'अपने' साथ,
भूल ही गई थी मानो-
खुद से खुद का रिश्ता,
ज़िन्दा होने का
अस्तित्व ढूंढने लगी थी,
किसी अन्ज़ानी नज़रों से,
जो मूंद आंखें-
टटोला मन मुस्कुरा उठा तन!
रेंगती हथेलियां खुद के बदन पर-
जोड़ गईं खुद से कहीं बहुत गहरे!

सीमा श्रीवास्तव

वे बोले बरबंड हो गई है
मैं बोली—
आज़ाद हो गई हूं।
उनके हाथों में
पायल के घुंघरू भुनभुना रहे हैं
मेरे कानों में उनके बोल
धुंधले पड़ गए हैं।

जागोरी नोटबुक 2006 से

पुरुषों के लिए अनुभवशील होना महत्वपूर्ण होता है। औरतों को कमतर व नियंत्रण में रखने के लिए यौनिक अनभिज्ञता, कौमार्य उत्तेजना का अभाव जैसे "नैतिक" पैमाने बनाए जाते हैं। उनकी भूमिका केवल पुरुष आकांक्षाओं की संतुष्टि के सीमित दायरे में आंकी जाती है। नियंत्रण का एक ओर तरीका होता है यौन से संबंधित बातों के प्रति गोपनीयता और खामोशी। औरतें से अपेक्षित होता है कि वे स्वभाविक सामान्य यौनिकता की पैरवी करते हुए यौन व यौनिकता के विषय पर मौन रखें। औरतों के लिए यौन संतुष्टि आनंद और इच्छा जैसे विश्लेषण बेमानी समझे जाते हैं।

यौन व यौनिकता को प्रभावित करने वाली सामाजिक संरचनाओं में परिवार मुख्य होता है जहां एक बच्चा अंतरंगता, स्नेह, वैध, अवैध, धर्म, स्वभाविक, वर्जित, वर्ग आदि के संदर्भ में यौन व यौनिकता की अभिव्यक्ति के नियम सीखता है। इसी के साथ राज्य कानून व अन्य संरचनाओं को प्रभाव भी तय होता है। पुरुष यौनिकता का महत्व तथा जीवन में इसका उच्च दर्जा औरतों को छुटपन से ही घरों में समझा-सिखा दिया जाता है। इस परिप्रेक्ष में वे यौन हिंसा खामोशी से सहती हैं और इसे नियति मान लेती हैं।

हम सबला के माध्यम से हम यौन व यौनिकता से जुड़े इन तमाम पहलुओं को उजागर कर सकें और इस विमर्श को आगे ले जाएं यही हमारा प्रयास है। हमारा मानना है कि यौनिकता की स्वतंत्र अभिव्यक्ति व इसे साक्ष्य बनाने के लिए सामाजिक संरचनाओं तथा इनके स्थापित मानदण्डों को चुनौती देनी होगी। उम्मीद है आप सभी इस कोशिश में हमारा साथ देगें।

अपनी प्रतिक्रिया, नज़रिए, विचार हमें लिख कर अवश्य भेजें।

–जुही